मोहन राकेश

जानवर और जानवर

राजकमल प्रकाशन
दिल्ली बम्बई इलाहाबाद पटना मद्रास

ज्ञान और मोहन को…
साथ गुज़रे हुए दिनों की याद में

काला रोज़गार

बस स्टैंड के अँधेरे भाग में खड़ी कोई आकृति, व्यस्तता प्रकट करती हुई, बार-बार घड़ी की ओर देखती। टैक्सियों के दायरे के पास कोई आकृति, वातावरण के प्रति उदासीनता का अभिनय करती हुई, बार-बार गले का पसीना पोंछती...

वह दुबली-सी लड़की साधना रेस्तराँ के बाहर टैक्सी से उतरी, और अन्दर जाकर कोने की मेज़ के पास बैठ गयी।

साधना रेस्तराँ, निःसन्देह, किसी कवि-मस्तिष्क की उपज है। वहाँ के किवाड़ पुरानी आबनूस की लकड़ी के हैं, जिनका निर्माण-काल सत्रहवीं शताब्दी है। अन्दर खाने-बैठने की मेज़ों के पीछे बुक-स्टॉल है। दाईं ओर एक प्लेटफ़ार्म है, जहाँ कोई बड़ी पार्टी हो तो डिनर की मेज़ें लगा दी जाती हैं, वरना चार-पाँच शतरंज की मेज़ें बिछी रहती हैं। सफेद बालों वाले कई बुज़ुर्ग वहाँ बैठे, मोहरों की साधना में लीन रहते हैं। रेस्तराँ में कोई ज़ोर से बात करे, या क़हक़हा लगाये, तो सहसा उन बुज़ुर्गों की भौंहें तन जाती हैं, और चेहरे इस तरह सिकुड़ जाते हैं, जैसे उन्हें सख़्त चोट पहुँचायी गई हो। यूँ प्रायः रेस्तराँ में सर्द ख़ामोशी छायी रहती है, और केवल छुरी-काँटों और मोहरों के चलने की आवाज़ ही सुनाई देती है। वहाँ बैठकर खेलने वालों को मौन-साधना का कुछ ऐसा अभ्यास है, कि बाज़ी का अन्तिम मोहरा चलते हुए वे मुँह से मात तक नहीं कहते।

वह लड़की, मेज़ पर कुहनियाँ रखे, सीधी नज़र से प्लेटफ़ार्म की ओर देखती रही। उस नज़र में एक जड़ता-सी थी, जैसे उसके लिए काठ के मोहरों और उन्हें चलाने वाले हाथों में विशेष अन्तर न हो। बैरा कॉफ़ी और सैंडविच लाकर उसके सामने रख गया, तो वह सैंडविच के ज़रा-ज़रा-से टुकड़े दाँतों से काटकर धीरे-धीरे चबाने लगी, जैसे उस काम

में काफ़ी मेहनत पड़ती हो। प्याली में कॉफ़ी उँडेल कर वह देर तक चम्मच से हिलाती रही, फिर हल्के-हल्के घूँट भरने लगी। उसकी आँखें प्लेटफ़ार्म से हटतीं, तो दीवार पर स्थिर हो जातीं। बीच-बीच में वह एक सतर्क नज़र इधर-उधर डाल लेती। कॉफ़ी समाप्त करके उसने आँख के इशारे से बिल मँगवाया, और सवा रुपया तश्तरी में डालकर उठ गई।

फ़ुटपाथ पर आकर वह भटकी हुई मुद्रा में कुछ क्षण इधर-उधर देखती रही। रूखे-मुरझाये हुए चेहरों का एक जुलूस फ़्लोरा फ़ाउंटेन की तरफ़ जा रहा था, दूसरा उस तरफ़ से आ रहा था। स्त्रीत्व और पुरुषत्व के भेद से रहित प्रायः एक-से चेहरे—हैट, कोट, फ़्राक, स्कर्ट और कॉलर। बस पकड़ने वालों के लम्बे-लम्बे क्यू धीरे-धीरे आगे को सरक रहे थे। घण्टियों की टन-टन और इंजनों की घर्राहट के बीच कई आकृतियाँ जल्दी-जल्दी सड़क पार कर रही थीं। अनेक पहिये, एक-दूसरे के पीछे घूमते हुए, सड़क की चिकनाई पर फिसलते जाते थे। लड़की ने दो-एक बार ओंठों पर ज़बान फेरी, और एडवर्ड्स होटल की ओर मुड़ गई।

एडवर्ड्स होटल और साधना रेस्तराँ के बीच केवल एक गली का फ़ासला है, जो अक्सर वीरान पड़ी रहती है। गली में घूमते ही लिफ़्टमैन रहमान ड्योढ़ी में कुरसी पर बैठा दिखायी देता है। लिफ़्ट सप्ताह में चार दिन बिगड़ा रहता है, इसलिए ज़्यादातर उसे अपनी मूँछों पर हाथ फेरते रहने के सिवा कोई काम नहीं होता। लड़की ड्योढ़ी के पास पहुँची, तो रहमान उसे सलाम करने के लिए नहीं उठा। मूँछ के कोने को उँगली और अँगूठे के बीच मसलते हुए उसने उसे टेढ़ी नज़र से देखा, और वह ज़ीने का पहला मोड़ मुड़ गई, तो पहले की तरह गली के शून्य का अध्ययन करने लगा।

लड़की अँधेरे में टटोल-टटोलकर क़दम रखती हुई सीढ़ियाँ चढ़ती गई। रूबी एण्ड कम्पनी, दिनशा ब्रदर्स और मोटरपार्ट्स प्राइवेट

लिमिटेड के दफ़्तरों के पास से गुज़रकर वह चौथी मंज़िल पर पहुँची। उसकी आँखें फ़ीरोज़ी शीशे में जड़े हुए मैले अक्षरों से टकराईं—राइट्स ऑफ़ एडमिशन रिज़र्व्ड। पल-भर साँस लेकर उसने अन्दर पोर्टिको में क़दम रखा, जिसे एक टूटा सोफ़ा सेट, एक पैबंद-लगी दरी, एक तिपाई तथा कुछ कुरसियाँ लगाकर मिसेज़ एडवर्ड्स ने कॉमन रूम का रूप दे रखा था। लड़की के अन्दर जाते ही वहाँ बैठकर अख़बार पढ़ने वालों की आँखें ऊपर उठ गईं। कुछ-एक की भौंहों पर सवालिया निशान उभर आये।

लड़की ने छः नम्बर का दरवाज़ा खटखटाया। कुछ क्षणों में दरवाज़ा खुला और वह अन्दर चली गई। दरवाज़ा बन्द हो गया।

कॉमन रूम में कानाफूँसी होने लगी।

"कौन है यह ?"

"उसकी बहन है।"

"उस हरामी की···?"

"उसकी बड़ी बहन है।"

"सगी बहन ?"

"सुना यही है कि सगी बहन है।"

"और माँ-बाप ?"

"माँ-बाप का पता नहीं। यह बहन ही यहाँ आती है।"

"यह कहाँ रहती है ?"

"यह भी पता नहीं।···सुना है टैक्सी है···।"

कुछ ओंठों पर रसात्मक मुस्कराहटें फैल गईं। आवाजें और धीमी हो गईं।

"यूँ तो काफ़ी दुबली-सी है।"

"पर कट अच्छा है।"

"और उम्र भी ज्यादा नहीं है। बाईस-तेईस की होगी।"

"अट्ठाईस-तीस का तो वहीं लगता है।"

"पर वह अभी इक्कीस का भी नहीं है। वैसे ही अन्दर से खाया हुआ है।"

"वह तो कुछ करता-धरता भी नहीं है। दिन-भर यहीं पड़ा रहता है।"

"बहन जो कमाती है।"

मुस्कराहटें और लम्बी हो गईं।

थोड़ी देर में छः नम्बर कमरे का दरवाज़ा खुला और वह लड़की और उसका भाई साथ-साथ बाहर निकले। लड़की ने मिसेज़ एडवर्ड्स के कमरे का दरवाज़ा खटखटाया। मिसेज़ एडवर्ड्स, जिसके पतले चेहरे की सब लकीरें ठुड्डी की तरफ़ जाती हैं, माथे पर दो शाश्वत बल डाले हुए बाहर निकली।

"मिस दारूवाला...।"

"येस् मिसेज़ एडवर्ड्स।"

मिसेज एडवर्ड्स के जबड़े सख्त हो गए। उसने दोनों को कमरे में दाखिल करके दरवाज़ा बन्द कर लिया।

"मैं कहती हूँ इस बार तुम इसे अपने साथ ही ले जाओ," उसने किसी तरह अपने लिए कुरसी खींचते हुए कहा। "यह आदमी और यहाँ रहेगा तो एक दिन में ही अपना होटल छोड़कर चली जाऊँगी।"

लड़की भी सामने की कुरसी पर बैठ गई। उसका भाई खड़ा रहा।

"मैं तुम्हारा बिल अदा करने आयी हूँ," उसने कहा।

"तुम मेरा आज तक का बिल अदा कर दो, और इसे यहाँ से ले जाओ।"

लड़की की आँखों में नमी भर आई। उसका भाई मुस्कराता रहा।

"इसे हँसी आ रही है!" मिसेज़ एडवर्ड्स उसे तेज़ आँखों से घूरती हुई चिढ़ उठी। "अपनी करतूतों पर इसे शरम नहीं आती।"

"मैं पैसे देकर यहाँ रहता हूँ, मुफ़्त में नहीं रहता।" भाई का चेहरा अकड़ गया, और गरदन फूल आई।

"तू पैसे देता है ?" मिसेज़ एडवर्ड्स रजिस्टर खोलकर गुस्से से पन्ने पलटने लगी। "तू कमाकर पैसे देता, तो तेरे होश-हवास दुरुस्त रहते। तूने तो ज़िंदगी में एक ही काम सीखा है, और वह है खाना।"

"जैसे तुम्हारे यहाँ का खाना किसी से खाया जा सकता है !"

मिसेज़ एडवर्ड्स की आँखों से चिनगारियाँ फूटने लगीं।

"तो कौन कहता है तुझसे खाने के लिए ? क्यों नहीं आज ही छोड़कर चला जाता ?"

वह रसीद-बुक में लगाने के लिए कार्बन पेपर ढूँढने लगी, पर अपनी उत्तेजना में उसे कार्बन पेपर नहीं मिला। कार्बन पेपर रजिस्टर के नीचे दब गया था। लड़की ने वह निकालकर उसके सामने कर दिया।

"इसकी बात का बुरा क्यों मानती हो मिसेज़ एडवर्ड्स ?" उसने कोमल स्वर में कहा, "तुम्हें पता तो है, यह बीमार रहता है।"

"यह बीमार है, यह ?" मिसेज़ एडवर्ड्स पेंसिल दबा-दबाकर रसीद में संख्याएँ भरने लगी। "मैं तुमसे ठीक कहती हूँ मिस दारूवाला, इसकी बीमारी-वीमारी सब बहाना है। यह घोड़े की तरह तन्दुरुस्त है, और घोड़े की तरह ही खाता है।"

"जो कुछ तुम्हारे यहाँ बनता है, वह घोड़ा ही खा सकता है, इन्सान नहीं।"

मिसेज़ एडवर्ड्स अत्यधिक उत्तेजना की वजह से एक हताशा की साँस लेकर ठंडी पड़ गई। लड़की ने नोट गिनकर उसके सामने रख दिए। उसने रसीद फाड़कर दे दी।

"सुन रही हो इसकी बात ?" वह फ़रियादी की तरह बोली, "अगर यह तुम्हारा भाई न हो, तो मैं इसे एक दिन के लिए भी यहाँ न रहने दूँ। दस मिनट में बोरिया-बिस्तर सड़क पर पहुँचवा दूँ।"

उसने नोट उठा लिये और दो बार गिनकर जेब में डाल लिये।

"इसे सुबह एक प्याली दूध और दे दिया करो," लड़की ने उठते हुए कहा। "मैं उसके पैसे अलग-से दे दिया करूँगी।"

मिसेज़ एडवर्ड्‌स ने भर्त्सनापूर्ण दृष्टि से उसके भाई को देखा।

"न जाने किस ख़ुशकिस्मती से तुझे परमात्मा ने ऐसी बहन दी है, जमशेद दारूवाला!" उसने कहा। "तू ऐसी बहन का भाई होने के लायक नहीं है।"

जमशेद दारूवाला ने कंधा मोड़कर नाटकीय ढंग से अपना रुख़ बदल लिया।

"मुझसे दोपहर के वक़्त रोज़ ठंडा गोश्त नहीं खाया जाता," वह बहन को सम्बोधित करके बोला। "इससे कह दो कि मेरे लिए यह तरी वाला गोश्त...।"

"मैं तरी वाला गोश्त नहीं दे सकती!" मिसेज़ एडवर्ड्‌स ने ज़ोर से रजिस्टर बन्द किया। "मैंने एक बार नहीं, दस बार कह दिया है और मैं रोज़ इस बारे में बक-झक नहीं करना चाहती। पाँच रुपये आठ आने में बम्बई का और जो होटल वाला इसे कमरा और चार वक़्त का खाना दे सकता हो, उसके पास इसे छोड़ आओ। इसे यह चाहिए, वह चाहिए। मैंने कह दिया है मैं एफ़ोर्ड नहीं कर सकती—तरी वाला गोश्त....।"

"और यह मेरे आमलेट में टमाटर नहीं डालती।"

"यही बहुत है कि मैं रोज़ दो अण्डे का आमलेट दे देती हूँ। इससे ज़्यादा मैं कुछ नहीं कर सकती।"

लड़की चुपचाप उठ खड़ी हुई, और मिसेज़ एडवर्ड्‌स से अभिवादन के शब्द कहकर बाहर चली गई। उसका भाई कुरसी की पीठ पकड़े पल-भर खड़ा रहा, फिर कंधे हिलाकर बाहर निकल गया। लड़की ज़ीने की ओर मुड़ गई तो वह कॉमन रूम के सोफ़े पर बिखर गया।

"आज तुम्हारा जोड़ का दर्द कैसा है?" किसी ने उससे पूछा।

"जैसा रोज़ रहता है," उसने ओंठ सिकोड़कर कहा। "रॉटन!"

मिसेज़ एडवर्ड्‌स अन्दर अपनी कुरसी पर बैठी देर तक बड़बड़ाती रही।

वह अक्तूबर का मध्य था। उसके बाद नवम्बर के अन्त तक छः-सात सप्ताह वह लड़की नहीं आयी। प्रायः वह आठवें-दसवें रोज़ आकर भाई

से मिल जाती थी, और उसका बिल अदा कर जाती थी। इतना लम्बा व्यवधान पड़ जाने से बिल के साथ-साथ मिसेज़ एडवर्ड्स के क्रोध का मवाद भी बरदाश्त की हद को पार करने लगा। वह रोज़ जमशेद से पूछती कि उसकी बहन की कुछ खबर है या नहीं। जमशेद एक ही उत्तर देता कि उसकी बहन जहन्नुम में चली गई है, और शीघ्र ही वह भी वहाँ जा रहा है। मिसेज़ एडवर्ड्स कुढ़ती हुई अपने दरवाज़े तक आती, और कॉमन रूम में बैठे हुए व्यक्तियों के सामने अपना रोना रोने लगती कि वह औरत है, इसलिए लोग उसे इस तरह तंग कर लेते हैं: उसका मर्द ज़िन्दा होता तो किसकी मजाल थी जो उससे इस तरह का, व्यवहार करता!

मिसेज एडवर्ड्स और उसके परिवार के अतिरिक्त जमशेद दारूवाला ही होटल की एक निश्चित इकाई था। कोई बैरा या खानसामा भी वहाँ साल से ज़्यादा नहीं रहता था, जबकि जमशेद को वहाँ रहते सवा साल हो गया था। वह भी पहले दो-तीन होटलों में झगड़ा करने के बाद वहाँ आया था। वहाँ से भी उसे दूसरे-तीसरे महीने जाना पड़ जाता, पर मिसेज़ एडवर्ड्स को एक खास वजह से उसकी बहन का लिहाज़ रखना पड़ता था। जब-तब पाँचवीं मंज़िल के किसी कमरे के लिए उसकी ज़रूरत पड़ती थी, और वह हरबंससिंह टैक्सी-ड्राइवर के ज़रिये उसे बुलवा लिया करती थी।

जमशेद दारूवाला पहले दिन से ही अपनी बीमारी की लम्बी-चौड़ी घोषणा के साथ आया था। उसके फेफड़े कमज़ोर थे, उसे जोड़ का दर्द रहता था, और जब-तब उसका ब्लड प्रेशर बढ़ जाता था। दो साल घर से ग़ायब रहकर वह ये सब बीमारियाँ ले आया था, और साथ ही यह डॉक्टरी हिदायत कि कुछ दिन उसे पूरा आराम करना चाहिए। बहन के साथ उसके फ़्लैट में रहने में दोनों को असुविधा थी, इसलिए उसने उसके

रहने का प्रबन्ध होटल में कर दिया था।

जमशेद सवेरे देर से उठता, और जब अन्य लोग तैयार होकर बाहर जा रहे होते, तो वह ब्रश करता हुआ बाथ-रूम की तरफ़ जाता। जब खाने का समय होता, तो वह नहाने के लिए गरम पानी की माँग करता। और लगभग अढ़ाई बजे, जब बैरे छुट्टी कर जाते, तो वह डाइनिंग रूम में आकर खाने के लिए चिल्लाने लगता। ऐसे समय प्रायः मिसेज़ एडवर्ड्स की उससे झड़प हो जाती थी। मिसेज़ एडवर्ड्स इस कानूनी नुक्ते को लेकर लड़ती थी कि बाहर लगे हुए बोर्ड के अनुसार खाने का समय बारह बजे से दो बजे तक है, उसके बाद उसे गरम खाना नहीं दिया जा सकता। जमशेद की नज़र में मिसेज़ एडवर्ड्स को ऐसा कानून बनाने का कोई अधिकार नहीं था। एक बोर्डर की हैसियत से उसे यह अधिकार था कि वह जिस समय चाहे, गरम खाने की माँग करे। मिसेज़ एडवर्ड्स बड़बड़ाती हुई स्वयं उसका खाना गरम करके दे देती थी। और जो भी बना होता, उसे लेकर फिर उनमें बहस हो जाती।

"ख़ूब !" जमशेद प्लेट पर नज़र डालते ही कहता। "आज का क्या मीनू है मिसेज़ एडवर्ड्स ? स्लाइस, काले पत्थर के टुकड़े और समुन्दर का पानी ! सभी सेहत अफ़ज़ा चीज़ें हैं।"

"परमात्मा के घर से अपनी अम्माँ को बुला ला, जो तेरे लिए इससे अच्छी चीज़ें बना दिया करे।"

"कुछ दिन और यहाँ का खाना खाऊँगा, तो मैं आप ही उसके पास पहुँच जाऊँगा।"

और मिसेज़ एडवर्ड्स रोज़ किसी-न-किसी के सामने प्रतिज्ञा करती कि वह चौबीस घण्टे के अन्दर-अन्दर उस-से कमरा ख़ाली करवा लेगी।

मिसेज़ एडवर्ड्स के अतिरिक्त आस-पास के कमरों में रहने वाले लोगों से भी जमशेद के घनिष्ठ आदान-प्रदान चलते रहते थे। हर कमरे में जाकर वहाँ ठहरे हुए लोगों से परिचय कर लेना उसकी हॉबी थी। परिचय के बाद शीघ्र ही वह हर एक से बेतकल्लुफ़ हो जाता, और

उससे ड्रिंक की या छोटे-मोटे कर्ज़ की माँग करने लगता। सवा साल के इतिहास में उसने किसी से लिया हुआ कर्ज लौटाया नहीं था, सिवाय एक कर्ज के, जो मार-पीट की नौबत आ पहुँचने पर मिसेज़ एडवर्ड्स ने उसकी ओर से अदा कर दिया था, और उसके हिसाब में डालकर उसकी बहन से वसूल कर लिया था। आधी बाँहों की नीली या पीली बनियाइन पहने वह कॉमन रूम के सोफ़े पर लेटा सीटी बजाता रहता था। किसी भी युवा लड़की के पास से गुज़रने पर उसकी सीटी की आवाज़ ऊँची हो जाती थी। उसका एक हाथ माथे की लटों से खेलता रहता, और दूसरा तरह-तरह की नाटकीय मुद्राओं में भावाभिनय करता रहता। कोई उससे उसका परिचय पूछता, तो वह माथे की लट को पीछे झटक कर अदा के साथ कहता, "मैं आर्टिस्ट हूँ।"

फिर वह यह स्पष्ट करता कि अभी वह बीमार है, ठीक होने पर निश्चय करेगा कि अपने किस आर्ट को डिवेलप करे। शौक उसे सभी कलाओं का था, जिनका थोड़ा-बहुत प्रदर्शन वह करता रहता था। कभी कार्टून बनाता रहता, और कभी अभिनय के साथ फिल्मी धुनें गाया करता। अब बहुत दिनों से कोई उसे ड्रिंक देने या सिनेमा दिखाने वाला नहीं मिला था, इसलिए उस पर निराशा का भूत सवार रहता था। वह प्रायः बग़ल में हाथ दबाये खिड़की के पास खड़ा सड़क से गुज़रती हुई बसों और ट्रामों की पंक्तियों को देखता रहता। उसकी दाढ़ी तीन-तीन दिन की बढ़ी रहती, और मिसेज़ एडवर्ड्स की छोटी लड़की रोज़ा जब भी उसके पास से गुज़रती, वह उसके गाल मसल देता। उसका नहाने-खाने का समय पहले से अधिक अव्यवस्थित हो गया था। कभी कोई उसकी बहन के बारे में पूछ लेता, तो वह दाँत भींचकर कहता, "अपने किसी यार के साथ भाग गई होगी···कुतिया!"

कभी वह उतरकर सड़क पर चला जाता और मुँह उठाए बस-स्टाप के पास खड़ा रहता। घरघराहट, घंटियों की टन-टन और हिस्चु-हिस्चु-हिस्चु की आवाज़···वह मूढ़ दृष्टि से पास से गुज़रती हुई दुनिया

को देखता रहता। अँधेरा होने पर कई छायाएँ फ़ुटपाथ के खंभों के साथ सटी हुई नज़र आतीं—टाँगें सीधी, जिस्म तने हुए और आँखें इधर-उधर भटकती हुई। पृष्ठभूमि में रीगल की बत्तियाँ चमकती दिखायी देतीं। बस स्टैंड के अँधेरे भाग में खड़ी कोई आकृति व्यस्तता प्रकट करती हुई बार-बार घड़ी की ओर देखती। टैक्सियों के दायरे के पास कोई आकृति वातावरण के प्रति उदासीनता का अभिनय करती हुई बार-बार गले का पसीना पोंछती, या मुँह के आगे रूमाल रखकर ज़रा-ज़रा खाँसती। वह आँखें गड़ा-गड़ाकर उन सब आकृतियों को देखता। पैट्रोल पम्प के पास खड़े छोकरे रूखे बालों पर हाथ फेरते हुए, एक दूसरे को आँख से इशारा करते। थोड़ी देर में वे आकृतियाँ टैक्सियों में समा जातीं, और टैक्सियाँ दाएँ या बाएँ मुड़कर भीड़ में खो जातीं। उसकी आँखें उधर से हटतीं, तो रीगल की बत्तियों से चुँधिया जातीं—इन्ग्रिड बर्गमेन और ग्रेगरी पेक एक अभिजात भावातिररेक की मुद्रा में—जेनिफ़र जोन्स, विभोर होकर क्रास के सामने झुकी हुई....।

फिर उसकी आँखें आस-पास की दबी-दबी आवाज़ों का अनुसरण करने लगतीं—माँगता है साब ? कितना पइसा खर्च करना माँगता है ? इंगलैंड का बोलो तो इंगलैंड का माल लाकर देंगा। इधर बम्बई का बोलो तो बम्बई का...।"

और तभी वह चौंककर किसी बस या ट्राम की खिड़की की ओर देखता, जो आँख के स्थिर होने से पहले ही ओझल हो जाती।

दिन में एकाध बार वह बहन के फ़्लैट पर भी हो आता था। वहाँ हर समय ताला लगा रहता था। हरबंससिंह टैक्सी-ड्राइवर ने बताया था कि वह भी जब वहाँ गया है, उसने ताला लगा ही देखा है। छः-सात सप्ताह से किसी और टैक्सी-ड्राइवर को भी वह नहीं मिली। सम्भव है किसी के साथ बम्बई से बाहर चली गई हो, या शायद...।

जमशेद रात को देर-देर तक मेरीन ड्राइव या इण्डिया गेट के पास घूमता रहता। नैरीमन पॉइंट की सीढ़ियों पर वह तब तक बैठा रहता,

जब तक समुद्र का पानी उसकी टाँगों से न टकराने लगता। रात को चमकती हुई वीरान सड़कों पर से लौटते हुए उसे लगता कि वह चल नहीं रहा, घिसट रहा है, और वह भी अपने पर ज़ोर देकर। वह देर से जाकर दरवाज़ा खटखटाता, तो पहले उसे चौकीदार की बड़बड़ाहट सुननी पड़ती। फिर ज़ीने में बिखरकर सोये हुए व्यक्तियों के ऊपर से लाँघना पड़ता। कमरा खोलते हुए साथ के किसी कमरे से खाँसी की आवाज़ सुनाई देने लगती। वह पलंग पर लेट जाता, तो खाँसी की आवाज उसके आस-पास के वातावरण को व्याप्त कर लेती। वह कई-कई बार तकिये की स्थिति बदलता, या पैताने होकर सोने की चेष्टा करता। खाँसी की आवाज़ बंद होती तो कहीं से घड़ी की टिक-टिक सुनाई देने लगती।···और सुबह जब उसकी आँख खुलती, तो कई बार बारह-साढ़े बारह बज चुके होते। कमरे से निकलते ही उसकी मिसेज़ एडवर्ड्स से मुठभेड़ हो जाती। उसे देखते ही मिसेज़ एडवर्ड्स की तेवरियाँ गहरी हो जातीं, और वह किसी को लक्षित करके कहती, "साहब उठ खड़ा हुआ है।"

वह दाँतों को ब्रश से रगड़ता हुआ, पास से निकलकर चला जाता।

वह उधर से लौटकर आता, तो भी मिसेज़ एडवर्ड्स कोई वैसी ही बात कह देती, "अब दो बजे साहब नाश्ता खाएगा।"

"दो बजे छोड़ कर तीन बजे खाएगा।" एक दिन जमशेद बुरी तरह भड़क उठा। "तुम्हारे पेट में क्यों तकलीफ़ होती है?"

मिसेज़ एडवर्ड्स तमककर खड़ी हो गई। "मुझे तकलीफ़ होती है क्योंकि मेरा पैसा खर्च होता है। तेरा बाप यहाँ अपनी जायदाद नहीं छोड़ गया है।"

"बक नहीं, हरामज़ादी।"

"क्या ऽ ऽ?" मिसेज़ एडवर्ड्स आवेश में आपा भूल गई, "तू शरम से डूब नहीं मरता? बहन के जिस्म की कमाई पर रोटी खाता है, और मेरे सामने आँखें तरेरता है! थू है तेरे जैसे आदमी पर! थू····थू···!"

जमशेद के हाथ ऐसे हिले जैसे उसे अभी गले से पकड़ लेगा। पर उसके घुटने नहीं हिले, और वह अपनी जगह पर जकड़ा-सा खड़ा रहा। मिसेज़ एडवर्ड्स पाँच नम्बर के सेठ को देखकर रोने लगी, "तुमने सुना सेठजी ? यह आदमी मुझे हरामजादी की गाली दे रहा है ! मेरे होटल में रहकर, मेरी ही रोटी खाकर मुझे गाली देते इसे शरम नहीं आयी। बेशरम, बेहया ! मेरा मर्द ज़िंदा होता तो देखती कि यह कैसे मुझे इस तरह गाली देता है !"

जमशेद दाँत भींचे हुए तेज़ी से मुड़ा, और कमरे में जाकर उसने धम से दरवाज़ा बन्द कर लिया। कुछ देर बाद पतलून-कमीज़ पहने हुए वह उसी तेज़ी के साथ निकला, और किवाड़ ज़ोर से पीछे को मारकर ज़ीने से उतर गया।

उसके बाद वह लौटकर नहीं आया।

रात के ग्यारह बजे तक मिसेज़ एडवर्ड्स प्रतीक्षा करती रही। उसके बाद उसने कमरे को ताला लगवा दिया। तीन दिन वह कॉमन रूम में हर एक के सामने रोती और झुँझलाती रही। चौथे दिन रात को उसने दो व्यक्तियों की उपस्थिति में ताला खोला और सामान की जाँच की। कपड़ों वाला ट्रंक खुला था। मुचड़ा हुआ नाइट-सूट चारपाई पर पड़ा था। मेज़ पर दवाई की कुछ शीशियाँ और एक खाली पोस्टकार्ड पड़ा था। एक टॉनिक की शीशी अभी खोली नहीं गई थी। फ़र्श पर टूटी हुई काली बाथरूम चप्पल, दो-एक बकलज़ और पुराने बदबूदार मोज़े पड़े थे। ज़ंग खाये शीशे के पास टूटी हुई कंघी और बदनुमा-सा शेव का सामान रखा था। तकिये के नीचे एक फटी हुई किताब थी—'हऊ टु विन फ्रेंड्स एण्ड इन्फ्लुएंस पीपल !'

वे सब चीज़ें बैरे से उठवाकर उसने अपने कमरे के एक कोने में डलवा दीं। सारा समय वह दूसरों को सुनाकर कहती रही, "यह कूड़ा मेरे लिए छोड़ गया है, मैं इसे हाथ से छूऊँगी भी नहीं। मेरा सात हफ़्ते का बिल बाकी है। लोग मुझे मेरे अहसान का यह बदला देते हैं···।"

अगले रोज़ छः नम्बर कमरे में नया किरायेदार आ गया।

अठारह-बीस रोज़ बाद एक शाम को जब दो-एक व्यक्ति कॉमन रूम में बैठकर चाय पी रहे थे, तो वह दुबली लड़की ज़ीने से आकर क्षण-भर के लिए ड्योढ़ी में ठहरी, और रूमाल से माथे का पसीना पोंछती हुई अन्दर आ गई। कॉमन रूम में बैठे हुए व्यक्तियों की आँखों में प्रश्नात्मक संकेत पैदा हुए। एक ने कंधे झटक दिये, और दूसरे ने मुँह बनाया कि जाने कौन है।

लड़की ने छः नम्बर का दरवाज़ा खटखटाया। दरवाज़ा खुलने पर वह अचकचा गई।

"जमशेद दारूवाला यहाँ नहीं है?" उसने पूछा।

"उस कमरे में जाकर पूछना माँगता है," उसे उत्तर मिला। "होटल का प्रोप्राइट्रेस उधर रहता है।"

लड़की ने मिसेज़ एडवर्ड्स का दरवाज़ा खटखटाया। मिसेज़ एडवर्ड्स उसे देखकर अचकचा गई।

"यू मिस दारू वाला...?"

"येस् मिसेज़ एडवर्ड्स।"

"आओ, आओ!" और उसने उसे अन्दर दाखिल करते हुए कहा, "लेकिन वह...तुम्हारा भाई कहाँ है?"

"वह यहाँ नहीं है?"

"यहाँ?" मिसेज़ एडवर्ड्स के गले से तिरस्कारसूचक ध्वनि पैदा हुई। "यहाँ से तो वह कई दिन हुए भाग गया है। वट ए मैन! बैठो, कुरसी ले लो।"

लड़की कुरसी की बाँह पकड़कर बैठ गई। मेज़ पर हिसाब का रजिस्टर और रसीद की कापियाँ क़रीने से रखी थीं। टाइम पीस के काले डायल के आगे सफ़ेद सुइयाँ चमक रही थीं। हर चीज़ जैसे घड़ी की आवाज़ के साथ टिक-टिक कर रही थी। लड़की ने ओंठों पर ज़बान फेरी। मिसेज़ एडवर्ड्स ने अपनी कुरसी का रुख बदल लिया।

"कितने दिन हो गए उसे गये हुए ?" लड़की के गले में ख़राश आ गई थी।

"आज बाईस-तेईस दिन हो गए।"

लड़की सूनी आँखों से मिसेज़ एडवर्ड्स के चेहरे को देखती रही, जैसे वह चेहरा न होकर कोई बेजान पदार्थ हो। उसके माथे पर पसीने की बूँदें झलक आईं। उसका चेहरा पहले से कहीं पीला नज़र आ रहा था।

"तुम इतने दिन कहाँ चली गई थीं ?" मिसेज़ एडवर्ड्स ने पूछा। "मैं रोज़ हरबंससिंह से पता कराती रही हूँ। वह कहता था···।"

"मैं अस्पताल में थी," लड़की कठिनाई से शब्दों को ज़बान तक लाई।

"अस्पताल में ?" मिसेज़ एडवर्ड्स के चेहरे पर थोड़ी कोमलता आ गई। "बीमार थीं ?"

लड़की ने रूमाल से माथे का पसीना पोंछ लिया।

"मेरा ऑपरेशन हुआ था।"

"ऑपरेशन ?" मिसेज़ एडवर्ड्स की आँख के ऊपरी परदे पर सहानुभूति उमड़ आई। "किस चीज़ का ऑपरेशन था ?"

लड़की की आँखें ऊपर उठीं, और झुक गईं। मिसेज़ एडवर्ड्स की आँखें उसके चेहरे को टटोलती रहीं।

"कहीं तुमने···?"

लड़की की आँखें फिर उठीं और झुक गयीं। एक आँसू उसके गाल तक बह आया।

"च्च् च्च्···!" मिसेज़ एडवर्ड्स की तेवरियाँ गहरी हो गईं। ऐसा काम तुमने क्यों किया ?"

लड़की की आँखें कई क्षण उठी रहीं, और उसके ओंठ काँपते रहे। मिसेज़ एडवर्ड्स ने उसकी आँखों से ही उत्तर पाकर एक लम्बी साँस ली। लड़की कुछ क्षण शून्य में खोयी रही। फिर सहसा उठ खड़ी हुई।

"तुम्हारे भाई का सामान पड़ा है," मिसेज़ एडवर्ड्स ने कोने की ओर संकेत किया।

लड़की कई क्षण कोने में पड़ी हुई चीज़ों को देखती रही।

"इन्हें बेचकर पैसे बिल में जमा कर लेना," उसने कहा।

"परन्तु···," मिसेज़ एडवर्ड्स भी बिल-बुक को सहलाती हुई खड़ी हो गई। "इनमें बिकने वाली चीज़ तो कोई भी नहीं है। उसका सात हफ़्ते तीन दिन का बिल है।"

"जितना बाकी रहेगा, मैं दे जाऊँगी।"

"यह समझो कि सारा ही बाकी रहेगा।"

"मैं दे जाऊँगी।"

और जल्दी से दरवाज़ा खोलकर वह ज़ीने की ओर बढ़ गई। फ़ुट-पाथ पर आकर वह सड़क पर अँधाधुँध दौड़ती हुई धुँधली-धुँधली रेखाओं को देखती रही, फिर साधना रेस्तराँ के अन्दर चली गई। सामने प्लेटफ़ार्म पर कई जगह शतरंज की बाज़ी चल रही थी। गम्भीर चेहरे, गम्भीर आँखें, और बगुलों की तरह मोहरों पर पड़ते हुए हाथ···। लड़की ने चेहरा सख़्त किये हुए दो-एक बार आँखों पर रुमाल फेरा, फिर रुमाल से आँखें दबाए हुए फफक उठी। मोहरों पर लपकते हुए हाथ क्षण-भर के लिए रुक गए, गम्भीर चेहरों की रेखाएँ गहरी हो गईं। एक बैरा उसके पास आ गया। उसने धुँधली आँखों से बैरे की ओर देखा, और झटके से उठकर रेस्तराँ से बाहर आ गई। पटरी के चिकने पत्थरों पर अस्थिर क़दम रखती हुई, वह बस-स्टॉप के पास पहुँचकर खड़ी हो गई। उसकी की आँखें इधर से उधर और इधर से उधर भटकने लगी।

असंख्य आकृतियों से लदी हुई बसें और ट्रामें म्यूज़ियम की ओर जा रही थीं, या उधर से आ रही थीं। टैक्सियों के दायरे में कितनी ही टैक्सियाँ जमा थीं। आर्ट गैलरी के बाहर बहुत भीड़ थी। शायद वहाँ कोई प्रदर्शिनी चल रही थी। बस पकड़ने वालों के क्यू धीरे-धीरे सरक

रहे थे, और क्यू से ज़रा हटकर कोई दबे-दबे शब्दों में किसी से कह रहा था, "माँगता है साहब ? एकदम नया माल है। तुम बोलो, हम तुमको अभी लाकर देंगा। पहले देखना, फिर पइसा का बात करना। बोलो, माँगता है ?"

पैट्रोल-पम्प के पास कोई सिगरेट फूँक रहा था और टैक्सी को आवाज़ दे रहा था।

आर्द्रा

नीची छत वाला वह टूटा-फूटा कमरा, मादा सूअर और उसके बच्चों की हुँफ्-हुँफ् और कुएँ की तरफ़ से आती हुई भद्दी, मोटी, फटी हुई आवाज़...

बचन को थोड़ी ऊँघ आ गई थी, पर खटका सुनकर वह चौंक गई। इरावती ड्योढ़ी का दरवाज़ा खोल रही थी। चपरासी गणेशन आ गया था। इसका मतलब था कि छः बज चुके होंगे। बचन के शरीर में ऊब और झुँझलाहट की झुरझुरी भर गई। बिन्नी न रात को घर आया था, न सुबह से अब तक उसने दर्शन दिये थे। इस लड़के की वजह से ही वह परदेस में पड़ी हुई थी, जहाँ न कोई उसकी ज़बान समझता था, न वह किसी की ज़बान समझती थी। एक इरावती थी, जिससे वह टूटी-फूटी हिन्दी बोल लेती थी, हालाँकि उसकी पंजाबी हिन्दी और इरावती की कोंकणी हिन्दी में ज़मीन-आसमान का अन्तर था। जब इरावती भी उसकी सीधे-सादे शब्दों में कही हुई साधारण-सी बात को न समझ पाती, तो वह बुरी तरह अपनी विवशता के खेद से दब जाती थी। और इस लड़के को रत्ती-भर चिन्ता नहीं थी कि माँ किस मुश्किल से दिन काटती है और किस बेसब्री से मेरी इंतज़ार करती है। आये तो घर आ गए, नहीं तो जहाँ हुआ पड़ रहे।

एक मादा सूअर अपने छः बच्चों के साथ, जो अभी नौ-नौ इंच से ऊँचे नहीं हुए थे, कुएँ की तरफ़ से आ रही थी। तूत के बुड्ढे पेड़ के पास पहुँचकर उसने हुँफ्-हुँफ् करते हुए दो-तीन बार नाली को सूँघा और फ़िर पेड़ के नीचे कीचड़ में लोटने लगी। उसके नन्हे आत्मज उसके उठने की राह देखते हुए वहीं आस-पास मँडराने लगे।

दिन-भर गली में यही सिलसिला चलता था। आसपास सभी

घरों ने सूअर पाल रखे थे। बस्ती में लोगों के दो ही धन्धे थे—सूअर पालना और नाजायज़ शराब निकालना। ये दोनों चीज़ें उनके दैनिक आहार में सम्मिलित थीं। बस्ती सैंटाक्रुज़ के हवाई अड्डे से केवल आधा मील के फ़ासले पर थी, पर पुलिस की आँख वहाँ नहीं पहुँचती थी। मोनिका का बाप जेकब गली में ही भट्ठी लगाता था। वह गली का सबसे बड़ा पियक्कड़ माना जाता था और अक्सर पीकर गली में गाता हुआ चक्कर लगाया करता था, 'ओ दैट आई हैड विंग्ज़ ऑफ़ एंजल्स, हियर टु स्प्रेड एण्ड हैवनवर्ड फ्लाऽऽइ…।'

उस समय वह रोज़ की तरह कुएँ के मोड़ के पास से लड़खड़ाता आ रहा था। उसके शब्द बचन की समझ के बाहर थे, परन्तु उसका स्वर उसके हृदय में दहशत पैदा करने के लिए काफ़ी था, 'ओ दैट आई हैड विंग्ज़ ऑफ़ एंजल्स, हियर टु स्प्रेड एण्ड हैवनवर्ड फ्लाऽऽई ! आई वुड सीक द गेट्स ऑफ़ सायन, फार बियाँड द स्टाऽरी स्काऽऽइ ! होइ-हो ! हो-हो-होऽऽ ! ओ दैट आई हैड विंग्ज़ ऑफ़ एंजल्स…

उसका चौड़ा चौकोर चेहरा वैसे ही भयानक था, अपने ढीले-ढाले काले सूट में वह और भयानक दिखाई देता था। चेचक के दागों और झुर्रियों से भरा उसका चेहरा दीमक-खायी लकड़ी की याद दिलाता था। दूर से ही उस आदमी की आवाज़ सुनकर बचन का दिल धड़कने लगता था और वह अपना दरवाज़ा बन्द कर लेती थी। उसने कितनी ही बार बिन्नी से कहा था कि वह उस बस्ती से मकान बदल ले, पर वह हर बार यह कहकर टाल देता था कि बम्बई की और किसी बस्ती में बीस रुपये महीने में उतना अच्छा मकान नहीं मिल सकता। बचन डर के मारे बिन्नी के आने तक लालटेन की लौ भी ज़्यादा ऊँची नहीं करती थी। अँधेरा बहुत बोझिल प्रतीत होता था, पर वह मन मारे बैठी रहती थी।

लालटेन की चिमनी नीचे से आधी काली हो रही थी। बचन को उसे साफ़ करने का उत्साह नहीं हुआ। अँधेरा होने लगा तो उसने जैसे कर्त्तव्य पूरा करने के लिए उसे जला दिया और अज्ञात देवता के आगे

हाथ जोड़ने की प्रक्रिया पूरी करके घुटनों पर बाँहें रखकर बैठ रही। सामने मोढ़े के नीचे लाली का कार्ड रखा था। वह उन अक्षरों की बनावट जानती थी, पर हज़ार आँखें गड़ाकर भी उनका अर्थ नहीं जान सकती थी। बिन्नी के सिवा हिन्दी की चिट्ठी पढ़ने वाला वहाँ कोई न था। बिन्नी से चिट्ठी पढ़वाकर भी उसे सुख नहीं मिलता था। वह लाली की चिट्ठी इस तरह पढ़कर सुनता था, जैसे वह उसके बड़े भाई की चिट्ठी न होकर गली के किसी ग़ैर आदमी के नाम आयी किसी नावाकिफ़ आदमी की चिट्ठी हो। दो मिनट में वह पहली सतर से लेकर आख़िरी सतर तक सारी चिट्ठी बाँच देता था और फिर उसे कोने में फेंककर अपनी इधर-उधर की हाँकने लगता था। हर बार उससे चिट्ठी सुनकर वह कुढ़ जाती थी, पर बिन्नी उसे नाराज़ देखता तो तरह-तरह की बातें बनाकर उसे ख़ुश कर लिया करता था।

उसे ख़ुश होते देर नहीं लगती थी। बिन्नी इतना बड़ा होकर भी, जब-तब उससे बच्चों की तरह लाड़ करने लगता था। कभी उसकी गोदी में सिर रखकर लेट जाता, और कभी उस के घुटनों से गाल सहलाने लगता। ऐसे क्षणों में उसका हृदय पिघल जाता और वह उसके बालों पर हाथ फेरती हुई उसे छाती से लगा लेती।

"माँ, तेरा छोटा लड़का कपूत है न ?" बिन्नी कहता।

"हा-हा" वह हटकने के स्वर में कहती। "तू कपूत है ? तू मेरे चन्ना...?" और वह उसका माथा चूम लेती।

लेकिन अक्सर वह बहुत तंग पड़ जाती थी। अनेक रातें ऐसी गुज़रती थीं, जब वह घर आता ही नहीं था। अँधेरे घर की छत उसे दबाने को आती थी और वह सारी रात करवटें बदलती रहती थी। ज़रा आँख झपकने पर बुरे-बुरे सपने दिखाई देने लगते थे। इसलिए कई बार वह प्रयत्न करके आँखें खुली रखती थी।

और वह आता था तो अपने में ही उलझा हुआ और व्यस्त-सा। वह समझ नहीं पाती थी कि उसे किस चीज़ की व्यस्तता रहती है।

जहाँ तक कमाने का सवाल था, वह महीने में कठिनता से साठ-सत्तर रुपये घर लाता था। कभी दस रुपये अधिक ले आता, तो साथ अपनी पचास माँगें उसके सामने रख देता—'इस बार माँ, दो कमीजें सिल जायँ और एक बढ़िया-सा जूता आ जाय।' उसकी बातों से वचन के ओंठों पर रूखी सी मुस्कराहट आ जाती थी। दस रुपये में उसे घर-भर का सामान चाहिए! और जब वह साठ से भी कम रुपये लाता, तो महीने-भर की बड़ी आसान योजना उसके सामने प्रस्तुत कर देता—'दूध सब्ज़ी की नागा, दाल, प्याज़, ख़ुश्क फुलके और बस!'

वह जानती थी कि ये रुपये भी वह ट्यूशन-ऊशन करके ले आता है, वरना सही अर्थ में वह बेकार है। उसके दिल में बड़े-बड़े मनसूबे अवश्य थे और उनका बखान करते समय वह छोटा-मोटा भाषण दे डालता था। परन्तु उन मनसूबों को पूरा करने के लिए जिस दुनिया की ज़रूरत थी, वह दुनिया अभी बननी रहती थी, और वह जोश से उँग-लियाँ नचा-नचाकर कहा करता था कि माँ, वह दुनिया बन जायगी तो तुझे पता चलेगा कि तेरा नालायक बेटा कितना लायक है!

"चुप रह ख़सम रखना!" वह प्रशंसा की दृष्टि से उसे देखती हुई कहती। "बड़ा लायक एक तू ही है।"

"माँ, मेरी लियाकत मेरे पेट में बन्द है!" वह हँसता। "जिस तरह हिरन के पेट में कस्तूरी बन्द होती है न, उसी तरह। जिस दिन वह खुल-कर सामने आएगी, उस दिन तू अचम्भे से देखती रह जायगी।"

उसे उसकी बातें सुनकर गर्व होता था। पर कई बार वह बहुत गुम-सुम और बन्द-बन्द-सा हो रहता था, तो उसे उलझन होने लगती थी।

और उसके साथ उसके अजीब-अजीब दोस्त घर आया करते थे। उन लोगों का शायद कोई ठौर-ठिकाना नहीं था, क्योंकि वे आते तो दो-दो दिन वहीं पड़े रहते थे, और खाने-पीने में निहायत बेतकल्लुफ़ी से काम लेते थे। चूल्हे से उतरती हुई रोटी के लिए जब वे आपस में छीना-

झपटी करने लगते, तो उसे आन्तरिक प्रसन्नता का अनुभव होता था। परन्तु प्रायः उसकी दाल की पतीली ख़ाली हो जाती थी, और यह देखकर कि उन लोगों की खाने की कामना अभी बनी हुई है, उसे घर का अभाव अपना अपराध प्रतीत होता था। ऐसे समय उसकी आँखों में नमी छा जाती और वह ध्यान बँटाने के लिए अन्य काम करने लगती। वे लोग रूखी नमकीन रोटियों की फ़रमाइश करते तो वह चुपचाप बना देती, परन्तु उन्हें खिलाने का उसका सारा उत्साह समाप्त हो चुका होता।

और उन लोगों के बहस-मुबाहिसे कभी शान्त नहीं होते थे। वे सब ज़ोर-ज़ोर से बोलते थे और इस तरह आपस में उलझ जाते थे, जैसे उन की बहस पर ही धरती और ईश्वर की सत्ता का दारोमदार हो। कई बार वे इतने गरम हो जाते थे कि लगता था अभी एक-दूसरे को नोंच डालेंगे मगर सहसा उस उत्तेजना के बीच से एक कहकहा फूट पड़ता और वे उठ-उठकर एक-दूसरे से बग़लगीर होने लगते। बिन्नी बचपन में बहुत ख़ामोश लड़का था। अब उसे इस तरह हुड़दंग करते देखकर उसे आश्चर्य होता था। कई-कई घण्टे घर में तूफ़ान मचा रहता था। उसके बाद फिर नीरवता छा जाती, जो बहुत ही अस्वाभाविक और दम घोटने वाली प्रतीत होती थी। जब बिन्नी दो-दो दिन घर नहीं आता, तो उस नीरवता के ओर-छोर गुम हो जाते और वह अपने को सदा से गहरे शून्य एकान्त में पड़ी हुई महसूस करती।

अँधेरा गहरा होने लगा, और मोनिका का बाप जाकर अपने कमरे में बन्द हो गया, तो उसने फिर दरवाज़ा खोल लिया। मादा सूअर और उसके बच्चे सामने घर के अहाते में डेरा जमाये थे और एक मोटा सूअर नाली के पास हुँफ्-हुँफ् कर रहा था। हवा तेज़ हो गई थी, और तूत के बुड्ढे पेड़ की डालियाँ बुरी तरह हिल रही थीं। आसमान का जो छोर दिखाई देता था, वहाँ रह-रहकर बिजली चमक जाती थी। दो महीने से प्रायः रोज़ ही वर्षा हो रही थी। घर से कुएँ तक गली में कीचड़-ही-कीचड़ भरा रहता था। इस कीचड़ के लिए बचन को लड़के-लड़कियों

की उन टोलियों से मिला था, जो वर्षा आरम्भ होने से पूर्व, आधी-आधी-रात तक गली में घूमती हुई तार-स्वर में ईश्वर से पानी बरसाने का अनुरोध किया करती थीं। अब जैसे उन्हीं की वजह से सारा दिन गली में चिपड़-चिपड़ होती रहती थी।

ड्योढ़ी के दरवाज़े पर फिर दस्तक हुई। इरावती ने दरवाज़ा खोल दिया और बिन्नी उधर से मुस्कराता हुआ अन्दर आ गया।

"आगे की तरफ़ बहुत कीचड़ है भाभी माफ़ करना," कहता हुआ वह अपने कमरे में आ गया। इरावती ने उस पर एक शिकायत-भरी नज़र डालकर दरवाज़ा बन्द कर लिया। उसके सिर के बाल बुरी तरह उलझे हुए थे और कुर्ता और पाजामा बहुत मुचड़े हुए थे। यह स्पष्ट था कि वह सुबह जिस हाल में सोकर उठा था, अभी तक उसी हाल में था और अब तक उसे मुँह-हाथ धोने का समय भी नहीं मिला था।

"माँ, जल्दी से रोटी डाल दे, भूख लगी है!" उसने आते ही चारपाई पर फैलते हुए आदेश दिया। बचन चुपचाप अपनी जगह पर बैठी रही। न उठी और न ही उसने मुँह से कुछ कहा। कुछ क्षण प्रतीक्षा करने के बाद बिन्नी ने सिर उठाया और कहा, "माँ, रोटी···।"

"रोटी आज नहीं बनी है," बचन बोली। "मुझे क्या पता था कि लाट साहब आज भी घर आएँगे कि नहीं? रात की रोटी मैंने सवेरे खाई, सवेरे की अब खाई। मैं किस तरह रोज़-रोज़ बासी रोटी खाती रहूँ? किसी तंदूर पर जाकर खा आ।"

बिन्नी हँसता हुआ उठ बैठा और माँ के मोढ़े के पास चला गया।

"यहाँ तंदूर है कहाँ, जहाँ जाकर खा लूँ?" वह बोला। "मेरे हिस्से की जो बासी रोटी रखी थी, वह तूने क्यों खाई? मेरी बासी रोटी दे···।" और वह माँ का घुटना पकड़कर बैठ गया।

"मेरे पेट से निकाल ले अपनी बासी रोटी!" बचन ने वाक्य आरम्भ किया था मीठी झिड़की के रूप में, पर समाप्त करते-करते उसकी आँखें गीली हो गईं।

बिन्नी ने उसकी गीली आँखें नहीं देखीं। वह उठकर रोटी वाले डिब्बे के पास चला गया और बोला, "डिब्बे में रखी होगी, ज़रूर होगी।"

बचन ने उसकी नज़र बचाकर अपनी आँखें पोंछ लीं। बिन्नी रोटी वाला डिब्बा लिये हुए उसके सामने आ बैठा। डिब्बे में कटोरा भर दाल के साथ चार रोटियाँ एक कपड़े में लपेटकर रखी थीं। बिन्नी ने जल्दी से एक रोटी तोड़ ली।

"यह तो ताज़ा रोटी है!" वह ग्रास मुँह में ठूँसे हुए बोला।

"बासी रोटी खाने को माँ जो है!" कहकर बचन उठ खड़ी हुई। उसने पानी का गिलास भरकर उसके पास रख दिया। बिन्नी ने एक घूँट में गटागट गिलास ख़ाली कर दिया और बोला, "और!"

बचन ने गिलास उठा लिया और सुराही से उसमें पानी उँडेलती हुई बोली, "लाली का कार्ड आया है।"

"अच्छा!" कहकर बिन्नी रोटी खाता रहा। उसने कार्ड के सम्बन्ध में जरा जिज्ञासा प्रकट नहीं की। बचन का दिल दुख गया। वह गिलास बिन्नी के आगे रखकर, बिना एक शब्द कहे अहाते में चली गई। और चारपाई पर दरी डालकर पड़ गई। उसका दिल उछलकर आँखों में बह आने को हो रहा था, पर वह किसी तरह चेहरा सख़्त करके अपने को रोके रही। थोड़ी देर में बिन्नी जूठे पानी से हाथ धोकर, मुँह पोंछता हुआ अन्दर से आ गया।

"कहाँ है कार्ड?" उसने पूछा।

"कहीं नहीं है", बचन ने रुँधे हुए स्वर में कहा और करवट बदल ली।

"अब बता भी दे ना, जल्दी से सब समाचार पढ़ दूँ।"

"सो जा, मुझे कोई समाचार नहीं पढ़वाने हैं।"

"पढ़वाने क्यों नहीं है, मैं अभी सब सुनाता हूँ," कहकर बिन्नी अन्दर चला गया और कार्ड ढूँढकर ले आया। साथ लालटेन भी उठा लाया। आधे मिनट में उसने सरसरी नज़र से सारा कार्ड पढ़ डाला।

"भैया की तबीयत ठीक नहीं है," वह लालटेन ज़मीन पर रखकर माँ की चारपाई के पैताने बैठ गया। बचन सहसा उठकर बैठ गई। बिन्नी ने गुन-गुन करके पहली डेढ़ पंक्ति पढ़ी और फिर उसे सुनाने लगा। लाली ने लिखा था कि उसका ब्लड प्रेशर फिर बढ़ गया था डॉक्टर ने उसे आराम करने की सलाह दी है। कुसुम का स्वास्थ्य अब ठीक है और उसका रंग लाली पर आ रहा है। उन्होंने मकान बदल लिया है, क्योंकि पहला घर हवादार नहीं था और बच्चों को वहाँ से स्कूल जाने में भी दिक्क़त होती थी। अब दीवाली पास आ रही है, इसलिए बच्चे माँ को बहुत याद करते हैं। माँ को गये छः महीने से ऊपर हो गए हैं, इसलिए सबका दिल माँ के लिए उदास है।

"इसके बाद सबकी नमस्ते है," कहकर बिन्नी ने कार्ड रख दिया।

"यह नहीं लिखा कि किस डाक्टर का इलाज कर रहा है?"

"तू जैसे वहाँ के सब डाक्टरों को जानती है।"

बिन्नी ने बात अनायास कह दी थी, पर बचन का हृदय छिल गया। उसके चेहरे पर फिर कठिनता आ गई।

"मैं कल वहाँ चली जाती हूँ," उसने कहा।

"तू चली जायगी तो मैं अकेला कैसे रहूँगा? मेरी रोटी···?"

बचन ने वितृष्णा से उसके चेहरे को देखा, जिसका अर्थ था कि क्या तेरी रोटी उसकी जान से ज़्यादा प्यारी है।

"तू कौन घर की रोटी पर रहता है," मुँह से उसने इतना ही कहा।

"भैया का ब्लड प्रेशर कोई नया तो है नहीं···", बिन्नी फिर कहने लगा।

"तू रहने दे, मैं कल जा रही हूँ," बचन ने उसे बीच में ही काट दिया। कई क्षण दोनों खामोश रहे। फिर बिन्नी 'अच्छा' कहकर उठ गया।

अगले दिन सुबह ही वह 'अभी थोड़ी देर में आऊँगा' कहकर चला गया और दोपहर तक लौटकर नहीं आया। बचन का किसी काम

में दिल नहीं लग रहा था। फिर भी उसने खाना बनाया और घर के सभी छोटे-मोटे काम पूरे किये। बिन्नी की चारों-पाँचों कमीज़ें लेकर, उनके टूटे हुए बटन लगा दिये। फिर उसने अपनी दरी और कपड़े एक जगह इकट्ठे कर लिये। यह निश्चित नहीं था कि वह उस दिन वहाँ से जा पाएगी या नहीं। बिन्नी सुबह उसे निश्चित कुछ बताकर नहीं गया था। सम्भव था कि वह फिर रात तक घर आए ही नहीं। रात को भी उसके आने का भरोसा नहीं था। यह भी सम्भव था कि बिन्नी के पास किराये के लिए पैसे हों ही नहीं। महीने की उन्नीस तारीख़ थी और उन्नीस तारीख़ को उसके पास कभी पैसे नहीं रहते थे। उस स्थिति में उसे तीन-चार तारीख़ तक अपना जाना स्थगित करना होगा। वह यह भी नहीं जानती थी कि दीवाली कौन तारीख़ को पड़ेगी। वह सोचने लगी कि इस बीच लाली की तबीयत ज़्यादा खराब न हो जाय। उसे ज़्यादा ही तकलीफ़ होगी, जो उसने चिट्ठी में लिखा है। नहीं वह चिट्ठी में कभी न लिखता। वह पन्द्रह-बीस दिन वहाँ से न जा सकी तो···?

तभी बिन्नी आ गया। उसके साथ उसका लम्बे बालों वाला दोस्त शशि भी था, जिसकी गरदन बात करते हुए तोते की तरह हिलती थी। वह उसकी दाल का सबसे बड़ा प्रशंसक था। आते ही दाल की फ़रमाइश करता था। सदा की तरह वे गली से ही ऊँचे स्वर में बातें करते हुए आये।

"टिकट ले आया हूँ," बिन्नी ने आते ही कहा। "मंगलवाड़ी से शशि को साथ लिया, और वहीं से टिकट भी ले लिया। पर तू अभी तैयार ही नहीं हुई····!"

"तैयार क्या होती ? तू मुझसे कहकर गया था···?"

"जब रात को तय हो गया था, तो सुबह कहने की क्या ज़रूरत थी ? अब जल्दी से तैयार हो जा। दो घण्टे में गाड़ी जायगी। नक़द सवा-बीस ख़र्च करके आया हूँ, और वे भी उधार के।"

बचन को बुरा लगा कि वह बाहर के आदमी के सामने ऐसी बात कह रहा है। वह नहीं जानती थी कि टिकट के लिए उसे रुपये उधार लेने पड़े होंगे ? वह कब चाहती थी कि उसकी वजह से उस पर उधार चढ़े ? वह कह देता, तो वह बारह-चौदह दिन बाद चली जाती।

वह कुछ न कहकर कपड़े लपेटने लगी।

"हट माँ, तुझे बिस्तर बाँधना आता भी है ?" बिन्नी आगे बढ़ आया। "उलटी-सीधी रस्सी बाँधेगी, कहीं से मोटा कर देगी, कहीं से पतला। हट जा, मैं एक मिनट में बाँध देता हूँ। ऐसा बिस्तर बँधेगा कि रास्ता-भर तेरा खोलने को जी नहीं चाहेगा।"

"तू रोटी खा ले, मैं बाँध लेती हूँ," बचन की आँखें भर आईं।

"रोटी खाने वाला आदमी साथ लाया हूँ," वह माँ के लपेटे हुए कपड़ों को फिर से फैलाता हुआ बोला, "यह इसीलिए आया है कि तू चली जायगी तो तेरे हाथ की दाल फिर कहाँ मिलेगी ?"

बचन की गीली आँखों में हल्की-सी मुस्कराहट भर गई।

"यह भी खा ले," वह बोली। "मैं अभी दो फुलके और बना देती हूँ।"

"और बनाने की जरूरत नहीं। जो हैं, वही खा लेंगे।"

"पहले मैं खा लूँ, फिर जो बचें वे इसे दे देना," कहकर शशि गरदन उठाकर हँस दिया। बिन्नी बिस्तर बाँधता रहा। वह उन दोनों के लिए रोटी डाल लाई।

"तैयार !" बिन्नी ने हाथ झाड़े और शशि के साथ खाना खाने डट गया।

"माँ, अपने लिए रख लेना और जितना बचे वह हमें ला देना," शशि दाल सुड़कता हुआ बोला। वे दोनों खा चुके तो बचन ने जल्दी से बरतन समेट दिये।

"अब माँ, तू भी जल्दी से खा ले," बिन्नी ने कुल्ला करके हाथ पोंछते हुए कहा।

"मैंने खा लिया है।"

"कब ?" बिन्नी ने पास जाकर उसके कन्धे पकड़ लिये।

"तेरे आने से पहले।"

"झूठी !"

"सच, मैंने खा लिया है।"

"आगे तो कभी इतनी जल्दी नहीं खाती।"

"आज खा लिया है।...घर से जाना था न ! तुम दोनों तो भूखे नहीं रहे ?"

"एक-चौथाई भूखे रह गए !" शशि ने डकार लेकर तौलिये से मुँह पोंछा और उसे खूँटी पर टाँगकर हँसने लगा।

स्टेशन पर उसे गाड़ी में बैठाकर वे दोनों प्लेटफ़ार्म पर टहलने लगे। रात को भी बचन ने ठीक से नहीं खाया था, इसलिए भूख के मारे उसका सिर चकरा रहा था। वह जानती थी कि बिन्नी को पता है उसने कुछ नहीं खाया। इसीलिए उसके मना करने पर भी वह आधी दर्जन केले लेकर रख गया था। वह एक बार मना कर चुकी थी, इसलिए नहीं खा रही थी। बिन्नी विशेष अनुरोध करता, तो वह खा लेती। मगर बिन्नी और शशि टहलते हुए दूर चले गए थे, और शायद अब भी उनमें बहस जारी थी। उसकी समझ में नहीं आता था कि ये लोग इतनी बहस क्यों करते हैं। हर वक़्त बहस, बहस, बहस ! बहस का कोई अन्त भी होता है ! जैसे सारी दुनिया के झगड़े इन्हीं को निपटाने हों ! फटे हाल रहेंगे, सेहत का ज़रा ध्यान नहीं रखेंगे, और बातें जैसे संसार की सम्पत्ति के यही स्वामी हों, और उसे बाँटने की समस्या इन्हीं के सिर पर आ पड़ी हो।

वे दोनों प्लेटफ़ार्म के उस सिरे तक होकर वापस आ रहे थे। वह उनके चेहरे देख रही थी। माथे पर सलवटें डाले वे हाथ हिला-हिलाकर बातें कर रहे थे। फिर भी वे बच्चे-से दीखते थे। उस समय शायद वे यह भी भूल गए थे कि वे उसे गाड़ी पर चढ़ाने आये हैं। सहसा गार्ड की सीटी सुनकर वे उसके डिब्बे के पास आ गए। परन्तु वहाँ आकर

भी उनकी बहस चलती रही—करघे का काम रुक जायगा तो लाखों आदमी बेकार हो जायँगे। और जैसे कोमल रोएँ हाथ के कपड़े के होते हैं, वैसे मशीनी कपड़े के नहीं हो सकते···! बचन सोचने लगी कि ये लोग कभी अपने कपड़े क्यों नहीं देखते ? इन्हें अपनी बेकारी की चिन्ता क्यों नहीं होती ?

गाड़ी चलने लगी तो जैसे बिन्नी को होश हुआ और उसने उसका हाथ पकड़कर कहा, "अच्छा माँ···।"

बचन के ओंठों पर रूखी-सी मुस्कराहट आ गई। उसने उसके सिर पर हाथ फेर दिया।

"अब कब आएगी ?"

"जब तू बुलाएगा।"

गाड़ी ने रफ़्तार पकड़ ली। वह देर तक खिड़की से सिर निकालकर उन्हें देखती रही। वे हाथ-में-हाथ डाले गेट की ओर जा रहे थे। उनकी बहस शायद अब भी चल रही थी।

बचन को घर आये पन्द्रह दिन हो गए थे।

"बिन्नी की चिट्ठी नहीं आई ?" उसने लाली के कमरे के बाहर रुककर पूछा। लाली से सवाल पूछने में उसके स्वर में शासित का-सा भाव आ जाता था। वह बेटा बड़ा होते-होते इतना बड़ा हो गया था, कि वह अपने को उससे छोटी महसूस करने लगी थी।

"आ जा माँ," लाली ने कागज़ों से आँखें उठाकर कहा। "चिट्ठी उसकी आज भी नहीं आई। न जाने इस लड़के को क्या हो गया है ?"

"तू काम कर, मैं जा रही हूँ," वह बोली। "सिर्फ़ चिट्ठी पूछने ही आई थी।"

वह बरामदे से होकर अपने कमरे में आ गई। वह जानती थी कि लाली का समय कीमती है। वह आधी-आधी रात तक बैठकर दूसरे दिन

के केस तैयार करता है। मुवक्किलों की वजह से उसका खाने-पीने का भी समय निश्चित नहीं रहता। छः महीने में उसकी व्यस्तता पहले से कहीं बढ़ गई थी। नये घर में आ जाने से जगह का आराम अवश्य हो गया था, पर कचहरी पहले से भी दूर हो गई थी। उसकी व्यस्तता के कारण वह कई बार सारा-सारा दिन उससे बात नहीं कर पाती थी। रात को जब वह बैठक से उठकर आता, तो सीधा सोने के कमरे में चला जाता। दिन-भर की थकान के बाद वह उसके आराम में विघ्न नहीं डालना चाहती थी। सवेरे वह कुसुम से पूछ लेती कि रात को उसकी तबीयत कैसी रही है। कुसुम संक्षेप में उसे हाल बता देती।

"सोने से पहले उसके सिर में बादाम रोग़न डाल दिया करो," वह कहती।

"मैं कई बार कहती हूँ, पर वे डलवाते ही नहीं," कुसुम जैसे रटा-रटाया उत्तर दे देती।

"मुझे बुला लिया करो, मैं आकर डाल दूँगी।"

"डालने को नौकर है, मगर वे डलवाते ही नहीं।"

वह जानती थी कि सिर में बदाम रोग़न डलवाने के लिए लाली को किस तरह मनाया जा सकता है। मगर कुसुम अपने को अधिक अन्तरंग समझती थी, और उसके सुझावों से सहमति प्रकट करती हुई भी, करती वही थी जो उसके मन में होता था। वह जिस शिष्टता और कोमलता से बात करती थी, उससे बचन को लगता था कि वह उस घर में केवल मेहमान है। दिन-भर उसके करने के लिए वहाँ कोई काम नहीं होता था। खाना बनाने के लिए एक नौकर था, और ऊपर का काम करने के लिए दूसरा। उनके काम की देख-भाल के लिए कुसुम थी। जब भी बचन कोई काम करने के लिए कहती, तो कुसुम नौकर का ज़िक्र कर देती—नौकर के रहते अपने हाथ से काम करने की क्या ज़रूरत है? यही बात लाली भी कह देता था—माँ, तू काम करेगी तो घर में दो-दो नौकर किस लिए हैं?

बचन सोचती थी कि काम करने के लिए नौकर हैं, और देख-भाल के लिए कुसुम है, फिर घर में उसका होना किसलिए है? सवेरे पाँच बजे से रात के दस बजे तक वह क्या करे? पन्द्रह दिन पहले वह आयी ही थी, तो बच्चे उसके गिर्द हुए रहते थे। उन्हें दादी से हज़ारों बातें कहनी और शिकायतें करनी थीं। मगर चार दिन में ही उनके लिए उसकी नवीनता समाप्त हो गई थी। उनकी अपनी छोटी-छोटी व्यस्तताएँ थीं, जिनमें उनका समय बँटा हुआ था। कुमुद कभी-कभी ज़रूर उसके पास आ जाती थी, और उसके कमरे में ख़ामोश खेलती रहती थी। उसे दादी शायद इसलिए अच्छी लगती थी कि माँ दोनों भाइयों से अधिक स्नेह करती थी···।

बचन कमरे में आकर चारपाई पर लेट गई। मन ताने-बाने बुनने लगा। बिन्नी ने अभी तक चिट्ठी क्यों नहीं लिखी? अँधेरे घर में इस समय वह अकेला सोया होगा। रोटी का जाने उसने क्या डौल किया है? उसने चलते समय उससे पूछा तक नहीं कि वह पीछे कैसे रहेगा, कहाँ रोटी खाएगा? उसके रहते वह तन-बदन की होश भूला रहता था, अब जाने उसकी क्या हालत होगी? चिट्ठी ही लिख देता तो कुछ तसल्ली हो जाती। मगर उसे चिट्ठी लिखने की होश आएगी?

कमरे की खिड़की खुली थी और दूर तक खुला आकाश दिखाई दे रहा था। खिड़की से दिखाई देते हुए उन नक्षत्रों के विन्यास से वह परिचित थी। वही नक्षत्र वह बम्बई की उस मनहूस बस्ती के ऊपर भी झिलमिलाते देखा करती थी। यहाँ से वे उसे तिरछे कोण से दिखाई देते थे, वहाँ वह अहाते में लेटकर उन्हें ठीक अपने ऊपर देखा करती थी। उसी तरह लेटे हुए वह बिन्नी की आहट की प्रतीक्षा करती थी। हुँफ्-हुँफ् की ध्वनियाँ पास आतीं, और दूर चली जाती थीं। फिर दूर से फटे हुए गले की बेहूदा आवाज़ सुनाई देने लगती थी, "ओ डैडाई है ड्विंजो-फेंजल···।" उस आवाज़ से वह कितनी घृणा करती थी! यहाँ इस एकान्त बँगले में आस-पास से कोई आवाज़ नहीं आती थी।

नौ-साढ़े नौ बजे बच्चों के सो जाने के बाद निःस्तब्धता छा जाती थी। केवल रंगीलाल के बरतन मलने या चौका धोने की ही आवाज़ सुनाई देती थी।

उसने करवट बदल ली कि किसी तरह नींद आ जाय। नींद न आना रोज़ की बात हो गई थी। कहाँ दस बजे से ही उसकी आँखों में नींद भर जाती थी, और कहाँ अब वह ग्यारह बारह और एक के घण्टे गिनती रहती थी। 'जाने क्यों ?' वह सोचती रह जाती।

रात को वह देर से सोई, मगर सुबह जल्दी उठ गई।

उठने पर उसका हृदय रात से अधिक अस्थिर और अशान्त था। इतना बड़ा पहाड़-सा दिन और उसके बाद फिर वैसी ही रात ! लम्बी निष्क्रियता की कल्पना से एक बड़ा शून्य उसके अन्तर को घेरे था। आकाश में चिड़ियों के गिरोह उड़ रहे थे। रसोईघर में रंगी स्टोव में हवा भर रहा था। उसे साहब के बिस्तर पर चाय पहुँचानी थी। बम्बई में सुबह जब वह कमरे में बालटी रखकर नहा रही होती, तो बिन्नी बाहर से चाय की माँग करने लगता था। उससे उसके भजन में बाधा पड़ती थी और उसे उलझन होती थी, पर वह चुपचाप उसके लिए चाय बना देती थी।···परन्तु आज उसे इस बात की उलझन हो रही थी कि उसका भजन में मन क्यों नहीं लगता। अब जब कि भजन के लिए पूरा अवकाश था, उसकी प्रवृत्ति उस ओर क्यों नहीं होती थी ?

वह कुछ देर बरामदे में खड़ी होकर सूर्योदय के स्वर्णिम रंग को देखती रही। क्षितिज के एक कोने से दूसरे कोने तक झिलमिलाती हुई स्वर्णिम आभा धीरे-धीरे निखर रही थी। लगता था, जैसे गोलक में बन्द उजाला फूटकर बाहर निकलने के लिए संघर्ष कर रहा हो। उजाले की बढ़ती हुई झलक से हर क्षण ऐसी प्रतीति होती थी। उसने बरामदे से उतरकर पूजा के लिए कुछ गेंदा के फूल चुन लिये और रसोईघर में चली गई।

रंगी स्टोव से केतली उतारकर चायदानी में पानी डाल रहा था।

उसने अपने आँचल के फूल आले में डाल दिये। रंगी ट्रे उठाकर चलने लगा, तो उसने ट्रे उसके हाथ से ले ली।

"रहने दे, मैं ले जाती हूँ।" और वह ट्रे लिये हुए लाली के कमरे की ओर चल दी।

"माँ जी, आप मत ले जाइए। साहब मुझ पर नाराज़ होंगे," रंगी ने पीछे से संकोच के साथ कहा।

"इसमें नाराज़ होने की क्या बात है? मैं तेरे कहने से थोड़े ही ले जा रही हूँ?" और वह थोड़ा खाँसकर लाली के कमरे में चली गई।

लाली कम्बल ओढ़कर बिस्तर पर बैठा था। कुसुम सोयी हुई थी। लाली के हाथ में कुछ काग़ज़ थे, जिन्हें वह ध्यान से पढ़ रहा था। उसने यह लक्षित नहीं किया कि चाय लेकर माँ आई है। बचन ने ट्रे मेज़ पर रख प्याली में चाय बनाई और उसके पास ले गई। लाली ने चाय के लिए हाथ बढ़ाया तो देखा कि प्याली लिये माँ खड़ी है।

"माँ, तू?" उसने आश्चर्य के साथ कहा।

बचन ने प्याली उसके हाथ में दे दी। उसने पहली बार लक्षित किया कि लाली के बाल कनपटियों के पास से सफ़ेद हो गए हैं। चश्मा उतार देने से उसकी आँखों के नीचे गहरे गड्ढे नज़र आ रहे थे। लाली ने काग़ज़ रखकर चश्मा लगा लिया।

"रंगी और नारायण क्या कर रहे हैं?" उसने पूछा।

"नारायण दूध लाने गया है," वह बोली। "रंगी रसोई-घर में है।"

"तो उससे नहीं आया जाता था? तू सुबह-सुबह उठकर चाय लाये, वाह! इससे अच्छा है मैं आप ही बनाकर पी लूँ।"

"तू ज़रूर बनाकर पी लेगा, जिसे यह नहीं पता कि दूध कौनसा है और चीनी कौनसी है!" वह थोड़ा हँस दी। तभी कुसुम करवट बदलकर उठ बैठी।

"माँ जी, आप······?" उसने भी आँख मलते हुए उसी आश्चर्य के साथ कहा। फिर झट-से कम्बल उतारकर वह बिस्तर से निकल आई।

"आप रहने दीजिए माँ जी, मैं बनाती हूँ।"

कुसुम दूसरी प्याली में चाय बनाने लगी। बनाकर प्याली उसने बचन की ओर बढ़ा दी।

"मैं अभी नहाई नहीं। अभी से चाय पी लूँ ?"

"पी भी ले माँ," लाली बोला। "कभी तो धरम-करम छोड़ दिया कर।"

"नहीं, मैं ऐसे नहीं पीती। तुम्हीं लोग पियो।"

कुसुम प्याली लेकर अपने बिस्तर पर चली गई। बचन लाली के पैताने बैठ गई। लाली और कुसुम खा़मोश चाय पीते रहे।

कमरे में हर चीज़ व्यवस्थित ढंग से रखी थी। अँगीठी पर नीले रंग का कपड़ा बिछा था, जिस पर कुसुम ने सफ़ेद डोरे से कढ़ाई की थी। वहीं एक ओर अख़रोट की लकड़ी का बना गौतम बुद्ध का बस्ट पड़ा था, और दूसरी ओर हाथी-दाँत की हंसों की जोड़ी रखी थी। सन्दूकों पर गद्दे बिछाकर उन्हें लाल कपड़े से ढक दिया गया था। कोने में कुसुम की सिलाई की मशीन पड़ी थी, और वहाँ पास ही लाली की अधसिली कमीज़ के टुकड़े बँधे रखे थे। मेज़ पर छोटे-से शेल्फ़ में लाली की किताबें पड़ी थीं और पास ही एक टेबल लैम्प रखा था। दूसरे कमरे में खुलने वाले दरवाज़े के पर्दे पर भी कुसुम ने अपने हाथ से कढ़ाई कर रखी थी। उधर से करवटें बदलने की आवाज़ आ रही थी। बच्चों की भी नींद खुल गई थी।

लाली ने चाय पीकर प्याली मेज़ पर रख दी। कुसुम अर्थपूर्ण दृष्टि से उसके चेहरे को देख रही थी। बचन उठ खड़ी हुई।

"चल दी, माँ ?" कहते-कहते लाली ने काग़ज़ उठा लिये।

"हाँ, तू अपना काम कर। मैं जाकर नहा-धो लूँ।"

"कोई खास बात तो नहीं थी ?"

"नहीं, बात कुछ नहीं थी। नौकर चाय ला रहा था, मैंने कहा मैं ले जाती हूँ।"

लाली की आँखें काग़ज़ों पर झुक गईं। कुसुम चाय के हल्के-हल्के घूँट भर रही थी। बचन चलने के लिए उद्यत होकर भी खड़ी रही।

"एक बात सोचती हूँ," वह कहने लगी।

लाली ने काग़ज़ फिर रख दिये।

"हाँ, हाँ!"

"इतने दिन हो गए, बिन्नी की चिट्ठी नहीं आयी···।"

"मैं अब उससे कोई गिला नहीं करता," लाली चिढ़े हुए स्वर में बोला। "ग़फ़लत की भी एक हद होती है। इस लड़के का घर वालों से जैसे कोई रिश्ता-नाता ही नहीं है।"

बचन चुप रही।

"यहाँ रहकर बी० ए० कर लेता तो कुछ बन-बना जाता। अब साहब ज़िन्दगी-भर आवारागर्दी करेंगे।"

बचन की आँखें भर आईं। उसने चेष्टा की कि आँसू आँखों में ही रुक जायँ, पर यह सम्भव नहीं हुआ तो उसने पल्ले से आँखें पोंछ लीं।

"यह लड़का न जाने कब अपनी होश रखना सीखेगा?···अपनी जान की भी तो फ़िक्र नहीं करता। वहाँ रहकर मैं ही जो थोड़ा-बहुत देख लेती थी, सो देख लेती थी। कभी-कभी सोचती हूँ कि मैं वहाँ उसके पास ही रहूँ तो ठीक है।" और वह निर्णय सुनने के ढंग से लाली की ओर देखने लगी। लाली गम्भीर हो गया। बोला नहीं।

"मैं कहती हूँ मेरी आँखों के सामने रहेगा तो मुझे पता तो चलता रहेगा कि क्या करता है, क्या नहीं करता···।" उसके स्वर में थोड़ी याचना भी आ गई।

"माँ जी का यहाँ दिल नहीं लगा," कुसुम ने प्याली रखते हुए कहा। पल-भर लाली की आँखें उससे मिली रहीं।

"अभी तो माँ, तू आयी ही है," वह बोला। "दस-पन्द्रह रोज़ में दीवाली है···।"

"मेरा बच्चों को छोड़कर जाने को मन करता है? मैं वैसे ही बात

कर रही थी," वह फिर-से चलने के लिए तैयार होकर बोली। "पता नहीं, रोटी भी ठीक से खाता है या नहीं।"

कुसुम उठकर रंगी को आवाज़ देती हुई बाहर चली गई।

"तू जाना ही चाहे तो और बात है।" लाली के चेहरे पर कुछ अन्यमनस्कता आ गई।

"जाने की बात नहीं है, मैं तो वैसे हो सोचती थी···।"

वह बाहर की ओर देखने लगी कि फिर न आँसू टपकने लगें।

"जाना है, चली जा। नहीं, खामखाह चिन्ता से परेशान रहेगी।"

बचन कुछ क्षण खामोश खड़ी रही। लाली अपनी उँगलियाँ मसलता रहा।

"किस गाड़ी से चली जाऊँ?"

"रात की गाड़ी ठीक रहती है। उसमें भीड़ कम होती है।"

"तेरी तबीयत की चिन्ता रहेगी···।"

"मेरी तबीयत ठीक ही है।"

"तू चिट्ठी लिखता रहेगा न?"

"हाँ। मैं नहीं लिखूँगा तो कुसुम लिख देगी।"

"अच्छा ···!"

रात को गाड़ी में उसे अच्छी जगह मिल गई। ज़नाने डिब्बे में उसके अतिरिक्त दो ही और सवारियाँ थीं। कुसुम नारायण को लेकर उसे छोड़ने के लिए आयी थी। लाली मुवक्किलों की वजह से नहीं आ पाया था। कुसुम गाड़ी चलने तक उसके पास बैठकर बातें करती रही कि दादी के पीछे बच्चे फिर उदास हो जायँगे, तीन-चार दिन घर सूना-सूना लगेगा, और कि वह रास्ते के लिए खाना बनवाकर ले जाती तो अच्छा था। गाड़ी ने सीटी दी तो कुसुम प्लेटफ़ार्म पर उतर गई।

"जाते ही चिट्ठी लिखिएगा," उसने कहा।

"तुम लाली की तबीयत का पता देती रहना," बचन ने कहा। सहसा उसे लाली के सफेद बालों का ध्यान हो आया।

"रात को उसे देर-देर तक मत पढ़ने देना, और उससे कहना कि सिर में बादाम रोग़न डलवा लिया करे।"

कुसुम ने सिर हिला दिया। गाड़ी चल दी तो उसने हाथ जोड़ दिये।

प्लेटफ़ार्म पीछे रह गया, तो बचन आकाश की ओर देखने लगी। उसके अन्तर में फिर एक शून्य-सा भरने लगा। क्षितिज के पास वही नक्षत्र चमक रहे थे। बचन अपलक दृष्टि से उन्हें देखती रही। वह जहाँ जा रही थी, उस घर का नक़्शा धीरे-धीरे उसकी आँखों के आगे घूमने लगा। नीची छत वाला वह टूटा-फूटा कमरा, मादा सूअर और उसके बच्चों की हुँफ्-हुँफ्, और कुएँ की तरफ़ से आती हुई मोटी, भद्दी फटी हुई आवाज़—ओ डैडाई है ड्विंजो-फेंजल···अँधेरा, एकान्त, बिन्नी, शशि और उनके दोस्त, बहसें और दाल-रोटी के लिए उन लोगों की छीना-झपटी···।

उसकी आँखें भर आईं। क्षितिज के पास चमकते हुए नक्षत्र धुँधले पड़ गए।

उसने आँखें पोंछ लीं। नक्षत्र फिर चमकने लगे।

मिस्टर भाटिया

गोपूमल मुझे लक्षित करके बोला, "इस शख़्स का भेजा ख़राब है !"

"मेरी तकदीर ख़राब है !" भाटिया ने संशोधन किया।...

भाटिया को इसमें सख्त एतराज़ है कि उसके नाम के साथ 'श्री' का प्रयोग किया जाय। उसकी भद्रता का परिचय केवल 'मिस्टर' या 'एस्क्वायर' द्वारा ही दिया जा सकता है।

भाटिया के पास पैसे हों तो वह इतवार को साढ़े-तीन बजे का शो देखने ज़रूर जाता है। जाता तो वह सदा अकेला ही है, पर टिकट उसके पास तीन रहते हैं। बुकिंग ऑफ़िस की खिड़की बन्द हो जाने पर, बीच का टिकट अपने लिए रखकर दायें-बायें के दोनों टिकट वह निराश भीड़ में खड़ी किन्हीं दो लड़कियों के हाथ बेच देता है। इस तरह अच्छा साथ पाने के लिए दैव के भरोसे नहीं रहना पड़ता।

टमाटर और अंडे खाने के बजाय चिट्ठियाँ लिखने के लिए आसमानी रंग का पैड मेज़ पर रखना भाटिया की दृष्टि में ज़िन्दगी की ज़्यादा बड़ी ज़रूरत है। उसने नीले सुन्दर अक्षरों में अपने नाम के लेटर पैड छपवा रखे हैं—

के० सी० भाटिया, (बी० एस-सी०, एल-एल० बी०)

डिग्रियों के अक्षर ब्रेकेट्स में देने का अर्थ यह है कि दो-दो साल साइंस और लॉ की श्रेणियों में बिताकर आवश्यक योग्यता तो उसने प्राप्त कर ली थी, पर दुर्भाग्यवश एक बार भी सफल परीक्षार्थियों की सूची में उसका नाम नहीं निकला।

तीन साल पहले भाटिया का वज़न एक मन दस सेर था। पिछले साल घटकर एक मन पाँच सेर रह गया था। इस साल शायद एक

मन तक उतर आया है। दो साल वह बेकार रहा। एक साल काम की तलाश करता रहा। आजकल विश्राम कर रहा है।

जिन दिनों मेरा भाटिया से परिचय हुआ, उन दिनों उसके पास स्वत्व के रूप में सिर्फ़ दो चीजें थीं—एक अपना शरीर और दूसरे किराये का एक फ़्लैट। था तो वह एक ही कमरा, मगर भाटिया उसके लिए फ़्लैट से कम किसी शब्द का प्रयोग पसन्द नहीं करता था। बम्बई में जगह की किल्लत सदा ही रहती है, उन दिनों और भी ज़्यादा थी। भाटिया किसी-न-किसी को अपने फ़्लैट में 'पेइंग गेस्ट' बनाकर रख लिया करता था। मेरा भाटिया से सम्पर्क भी इसी सिलसिले में हुआ।

मुझे भाटिया के फ़्लैट में आये तब दो-चार रोज़ ही हुए थे। ज़्यादा-से-ज़्यादा एक सप्ताह हुआ होगा। सवेरे उठने पर मैंने देखा कि भाटिया ढेरों काग़ज़ चारों ओर फैलाकर किसी उलझन में पड़ा है। मैं काफ़ी देर उसके चेहरे की तरफ़ देखता रहा। उसने मुझसे आँख नहीं मिलाई। मैंने भी कुछ कहना उचित न समझकर अख़बार उठा लिया। मगर मैं अखबार पर नज़र जमा भी नहीं पाया था कि भाटिया अचानक कलम फेंककर बोल उठा, "यह निकला!"

साथ ही उसने मेज़ पर मुक्का मारा और बाँह को हवा में झटका दिया।

"क्या निकला है भाटिया?" मैंने अख़बार रख दिया और उसकी ओर देखा।

"घोड़ा!" भाटिया मुस्कराया। उसने ऊपर के ओंठ को दाँतों में भींच लिया और नीचे के ओंठ को थोड़ा ढीला हो जाने दिया।

"घोड़ा?" मैंने आश्चर्य के साथ पूछा।

भाटिया ने उत्तर न देकर काग़ज को उँगली से ठोंका। मैंने उचक-कर देखा। काग़ज़ पर मोटे-मोटे अक्षरों में लिखा था—ग़िज़ाला।

मैंने फिर अनजान की तरह उसकी ओर देखा।

"आज दूसरी रेस ग़िज़ाला जीतेगा," भाटिया ने समझाया।

"जीतेगा क्या दुनिया नीचे से ऊपर कर देगा। दस रुपये के बदले एक सौ बीस, एक सौ तीस रुपये मिलेंगे। है सलाह ?"

बिना उत्तर की आशा या प्रतीक्षा किये वह उठकर टहलने लगा। फिर क्षण-भर के लिए रुककर उसने शीशे में अपना चेहरा देखा। फिर कंघी से बालों को माथे के ऊपर लाकर देखा। फिर धीरे-धीरे बालों को सँवारने लगा। कंघी रखकर उसने दाढ़ी को छुआ, ब्रश पर क्रीम लगाई और प्याली में पानी लाने के लिए चला गया।

मैं अख़बार खोलकर देखने लगा। आठवें पृष्ठ पर घुड़दौड़ की सूचनाएँ और घोड़ों के चित्र दिये हुए थे। लेडी क्लियोपात्रा का लम्बा-चौड़ा बखान था। मेघपुष्प, नसरुल्लाह और रंगाराव आदि के जीतने की भविष्यवाणी की गई थी।

भाटिया पानी लाकर ब्लेड तेज़ कर रहा था। मैंने उससे पूछा, "घुड़दौड़ पर तुम हर सप्ताह जाते हो ?"

"जब भी पैसे होते हैं चला जाता हूँ," उसने बिना मेरी ओर देखे उत्तर दिया।

"कभी जीते हो ?"

भाटिया ने ड्राअर खोलकर तौलिया निकाला। तौलिये को गरदन से लपेट लिया और गरदन के निचले भाग में खुजलाते हुए कहा, "आज पॉज़िटिव्ली जीतूँगा।"

तभी किसी ने दरवाज़ा खटखटाया। भाटिया ने कुण्डी खोल दी। एक मक्खी-कट मूँछों वाला साँवला, दुबला, ठिगना व्यक्ति दरवाज़ा खोलकर अन्दर आ गया। आते ही वह अपने काले-पीले कत्थई दाँत उघाड़कर मुस्कराया। साथ ही उसने भाटिया को अधूरा-सा सलाम किया।

"बैठे हैं ?" उसने बग़ल से बही निकालते हुए पूछा।

"अगले महीने !" भाटिया ने खुश्क होते हुए गले से उत्तर दिया।

वह व्यक्ति फिर दाँत निकालकर मुस्कराया। धोती से कुरसी झाड़-

कर बैठ गया और बही के पन्ने पलटने लगा। कुछ देर गिनती करके बोला, "पांचवाँ महीना चल रहा है।"

"मुझे पता है," भाटिया ने उपेक्षा के साथ कहा।

"अब की किराया ज़रूर ले जाना है।" वह धोती से अपने को हवा करने लगा।

भाटिया का हाथ पतलून की पिछली जेब में चला गया। उसने एक पाँच का नोट निकालकर उसकी तरफ़ फेंक दिया। मुन्शी नोट का निरीक्षण करता हुआ जम्हाई लेकर उठ खड़ा हुआ और बोला, "तो अगले हफ़्ते आऊँ?"

"नहीं, पहली तारीख़ को," भाटिया ने तेज स्वर में कहा और ठुड्डी के नीचे ब्लेड को उसी तेज़ी के साथ खींच दिया। लहू की हल्की-सी लकीर निकल आई और सफ़ेद झाग में मिलकर केसरिया होने लगी।

सीढ़ियों पर मुन्शी के पैरों की आहट समाप्त होते ही भाटिया बड़बड़ाने लगा, "सूअर का बच्चा! पाजी!"

दाढ़ी बनाकर भाटिया मेरे पास आ बैठा और पाँच-पाँच के नोटों की गड्डी निकालकर उसने ताश की तरह पलंग पर फैला दी।

"ये रुपये क्या होंगे?" मैंने पूछा।

"छः घण्टे के अन्दर ये दो सौ से बीस सौ हो जायँगे।" और उसने वह पुलिंदा समेटकर जेब में डाल लिया।

"इतने रुपये कहाँ से मार लाये?" मैंने पूछा। पिछली रात को उसकी जेब में कुल सवा रुपया बाकी था।

भाटिया का निचला ओंठ ढीला हुआ और उस पर हल्की-सी मुस्कराहट व्यक्त हुई। फिर मुस्कराहट को ढाँपते हुए शब्द निकले, "गोपूमल से।"

गोपूमल को मैं दो-एक बार पहले देख चुका था। वह बहुत नाटा और मोटा व्यक्ति था जिसके गले से शब्द घरघराकर निकलते थे।

दो-एक इंच और छोटा होता तो उसे बौना कहा जा सकता था।

"सब रुपये ग़िज़ाला पर लगाओगे ?" मैंने पूछा।

"येप् !" भाटिया ने ओंठों को ठेठ अमरीकन ढंग से करवट देकर कहा। फिर किवी की डिबिया उठाकर जूते पर पालिश लगाने लगा।

उस दिन भाटिया का अनुमान वाक़ई सही निकला। दूसरी रेस ग़िज़ाला ने जीत ली। उस पर रुपया लगाने वालों को दस के बदले एक सौ पेंतीस रुपये प्राप्त हुए।

परन्तु भाटिया के साथ ट्रेजेडी हो गई।

पहली रेस के समय भाटिया के पाँव पर एक सज्जन का जूता आ गया। उनका नाम था कैप्टेन केशव। कैप्टेन केशव ने क्षमा माँगी, परिचय किया, हाथ मिलाया और बातें करने लगे। फिर उन्होंने अपनी पत्नी शारदा और बहन लीना के साथ भी उसका परिचय कराया।

उनके आग्रह पर भाटिया को उनके साथ चाय पीने के लिए बैठना पड़ा। लीना ने अपने गोरे और मुलायम हाथों से चाय की प्याली उसकी ओर बढ़ाते हुए विचार प्रकट किया कि दूसरी रेस गिज़ाला नहीं जीत सकता। भाटिया को उन सुन्दर ओंठों की कही हुई बात पर सहज ही विश्वास हो गया। लीना ने उसे टिप दिया कि वह जितना रुपया लगाना चाहे नसरुल्लाह पर लगा दे, क्योंकि उन्हें विश्वस्त सूत्र से पता चला है कि दूसरी रेस में नसरुल्लाह को जिताया जा रहा है। कैप्टेन केशव नसरुल्लाह पर पाँच सौ रुपया लगा रहे थे। भाटिया ने भी उनके कहने से अपनी दो सौ की पूँजी नसरुल्लाह पर लगा दी। मगर नसरुल्लाह उस रेस में दूसरा, तीसरा, चौथा भी नहीं आया। कैप्टन केशव ने सिगरेट सुलगाते हुए कहा, "हऊ अनलकी !" और अगली रेस का चार्ट देखने लगे। लीना ने भाटिया के साथ सहानुभूति प्रकट की और उसके सही अनुमान की प्रशंसा की। भाटिया के खून का दबाव सिर की तरफ़

बढ़ रहा था, फिर भी वह किसी तरह मुस्कराता रहा। मगर घर आकर उसने लीना, कैप्टेन केशव और नसरुल्लाह सब की सात पुश्तों को जी खोलकर सिन्धी-अंग्रेज़ी में गालियाँ दीं और रात-भर बेचैनी से करवटें बदलता रहा। दिन होने पर भी वह बिना नहाये-धोये बिस्तर में पड़ा रहा।

मैं उसे उसी तरह छोड़कर बाहर चला गया।

शाम को जब मैं लौटकर आया तो भाटिया कॉलर-टाई लगाये, शान से बैठा सैंट्रल बैंक की चेक-बुक में से बड़ी-बड़ी रक़मों के चेक काट रहा था।

मुझे देखकर उसने बड़े आदमियों के अन्दाज़ में बैठने का संकेत किया और एक दस हज़ार का चेक मेरे नाम लिखकर, हस्ताक्षर करके मेरी ओर बढ़ा दिया।

"क्यों भाटिया साहब, नशे के लिए पैसे आज कहाँ से मिल गए ?" मैंने चेक लेकर पूछा।

"मैंने नशा नहीं लिया," वह बोला। "मैं बिलकुल होश में हूँ।"

"तब तो मामला और भी ख़तरनाक है।" मैं बैठ गया।

भाटिया ठहाका मारकर हँसा और बोला, "चेक पर तारीख भी देखी है ?"

मैंने देखा कि चेक पर पूरे पचास साल बाद की तारीख़ डाली गई है।

"यह चेक-बुक कहाँ से उड़ा लाये ?" मैंने पूछा।

"यहीं पड़ी थी," उसने सहज भाव से कहा।

"तुम्हारा बैंक में हिसाब है ?"

"नहीं।"

"फिर चेक-बुक कहाँ से आ गई ?"

"भटनागर की है। वह पहले मेरे यहाँ पेइंग गेस्ट था। उस बेचारे को बेकारी ने बम्बई से भगा दिया।"

और उसने एक चेक सवा लाख रुपये का, कुमारी लीना कपूर के नाम काट दिया।

"आज इतनी जल्दी कैसे रंग बदल गया, भाटिया ?" मैंने पूछा।

भाटिया ने लीना कपूर का चेक तह किया, खोला, फिर तह किया। फिर जेब से एक नीले रंग का लिफ़ाफ़ा निकालकर उसमें से पत्र निकाल लिया और चेक डाल दिया। लिफ़ाफ़ा जेब में रखकर उसने पत्र मेरी ओर बढ़ा दिया।

पत्र कैप्टेन केशव का था। उन्होंने भाटिया से कुछ रेस-सम्बन्धी बातें करने की इच्छा प्रकट की थी और उस सिलसिले में उसे शाम को खाने पर निमन्त्रित किया था।

"क्या इरादा है ?" मैंने पूछा।

"इरादा ठीक है, पर धोबी दूसरी पतलून नहीं दे गया।"

"तो ?"

"इसी पतलून को प्रेस करूँगा।"

"कमीज़ धुली हुई हो तो मैली पतलून साथ चल जाती है।"

"सो तो ठीक है, मगर जो कमीज़ धुली हुई है, वह कन्धे से फट रही है।"

"फिर ?"

"ऊपर कोट पहनना पड़ेगा।"

बुलावा साढ़े सात बजे का था, मगर भाटिया पतलून प्रेस कर के, जूते चमकाकर और शेव करके साढ़े छः बजे ही तैयार हो गया। नीचे जाकर वह दो पैसे में 'ईवनिंग न्यूज़' ले आया और पौन घंटा कमरे में चहलक़दमी करता रहा। सवा सात बजे वह शीशे पर आख़िरी नज़र डालकर चला गया।

रात को वह मेरे आने से पहले ही लौट आया था। मैंने देखा उसके ओंठ अकारण फैल रहे हैं और गालों में चिकनाई भर रही है। वह व्यस्ततापूर्वक 'लाइफ़' के नये अंक में से तस्वीरें काट रहा था।

"यह क्या सनक है भाटिया ?" मैंने बैठते हुए पूछा।

"अपनी आने वाली ज़िन्दगी की रूपरेखा बना रहा हूँ," वह बोला।

"तस्वीरें काटकर ?"

भाटिया ने ओंठ सिकोड़कर सिर हिलाया और बोला, "तुम्हें पता है, छः महीने बाद मेरी ज़िन्दगी क्या होगी ?"

मैं गम्भीर हो गया।

"एक ऐसा ड्रॉइंग रूम," और भाटिया ने ड्रॉइंग रूम की कटी हुई तस्वीर मेरे हाथ में दी।

"एक ऐसी कार," और उसने ब्यूक कार की कतरन मेरी ओर बढ़ा दी।

"और एक ऐसी लड़की !" उसने पल-भर प्यार की नज़र से देखकर वह चित्र मेरी ओर बढ़ाया। वह रीटा हेवर्थ का एक फ़िल्मी पोज़ था।

"रीटा हेवर्थ जैसी लड़की तुम्हें कहाँ मिलेगी ?" मैंने पूछा।

"यहीं, बम्बई में—और एक नहीं दस-दस। सिर्फ़ पैसा चाहिए।"

"और पैसा कहाँ से तशरीफ़ लाएगा ?"

भाटिया ने उँगली से अपने माथे को छुआ, "इस दिमाग़ से।"

"तब मिल गई तुम्हें रीटा हेवर्थ !" और मैं उठने लगा।

"अरे बैठो," भाटिया आग्रह के साथ बोला। "बात यह है कि हम लोग रेस कार्ड निकाल रहे हैं।"

"हम लोग कौन-कौन ?"

"कैप्टन केशव और मैं। कैप्टन केशव का पैसा लगेगा और मेरा दिमाग़। उन्हें मेरे कैल्क्युलेशन पर बहुत विश्वास है। तुम भी देख लेना, जिस घोड़े पर पेंसिल रख दूँगा, वही जीतेगा।"

फिर उसने 'लाइफ़' में से एक रेडियोग्राम की तस्वीर काटकर ड्रॉइंग रूम के साथ रखते हुए कहा, "एक बात और भी है।"

मैं बिना कुछ कहे उसकी ओर देखता रहा।

"वह लीना है न ?"

मैंने सिर हिलाया।

"वह मेरी तरफ़ कुछ...मेरा मतलब है कि कुछ ऐसी बात है और मैं उस पर विचार कर रहा हूँ।"

"मतलब वे लोग ख़ासा इन्वेस्टमेंट कर रहे हैं।"

भाटिया पल-भर गम्भीर रहा। फिर बोला, "भाई, कल्चर्ड तो वह है, पर सौन्दर्य की दृष्टि से ज़रा साधारण-सी है। अपने अब के स्टैण्डर्ड से तो ठीक है, पर बाद के स्टैण्डर्ड से...ख़ैर ठीक ही है।"

"यह बाद का स्टैण्डर्ड कब से शुरू होता है ?"

"देखते चलो," वह आगे की ओर झुककर बोला। "साल-भर में हमारा फ़ोर्ट में दफ़्तर खुल जायगा। चार-चार चपरासी होंगे और एंग्लो-इंडियन लड़कियाँ टाइपिस्ट होंगी। बाहर बोर्ड लगा होगा—के० सी० भाटिया, एस्क्वायर। ताज में डांस हुआ करेंगे और क्रिकेट क्लब में डिनर।"

"फ़िलहाल दफ्तर कहाँ खुल रहा है ?"

"फ़िलहाल यहीं," उसने कमरे में चारों ओर नजर दौड़ाई। "यहाँ एक पार्टीशन लगा देंगे। एक हिस्सा बॉस का कमरा हो जायगा। वहाँ मैं बैठूँगा। दूसरे हिस्से में एक टाइपिस्ट बिठा देंगे। ड्योढ़ी में वेटिंग रूम हो जायगा। रहा कैप्टन केशव का सवाल, सो उनके लिए....," और वह गम्भीर होकर बालकनी की तरफ़ देखने लगा।

"काम शुरू किस दिन से कर रहे हो ?" मैंने पूछा।

भाटिया ने इस अन्दाज़ से छत की ओर देखा जैसे उस सवाल का जवाब वहाँ पर लिखा हो और बोला, "बहुत जल्द। बस समझ लो पहली तारीख़ से।"

दूसरे दिन भाटिया का कैप्टन केशव के यहाँ चाय के लिए निमंत्रण था। उन्हीं के साथ रात को उसका पिक्चर देखने जाने का भी प्रोग्राम था। रात को पिक्चर के बाद वह उन्हीं के घर पर रह गया। सुबह सात बजे लौटकर आया और आते ही पलंग पर सीधा लेट गया। फिर

एकाएक उठकर शीशे के सामने चला गया। शीशे में चेहरा देखकर, फिर आकर बिस्तर पर पड़ गया।

"देखना, मुझे बुख़ार तो नहीं है ?" उसने अपना दायाँ हाथ मेरी ओर बढ़ाया।

"क्यों, रात को उन्होंने कोई गरम चीज़ खिला दी है क्या ?"

"नहीं," वह बोला। "बात यह है कि उनका बिस्तर बहुत गरम, गुदगुदा और मुलायम था। मुझे सारी रात नींद नहीं आई। ऐसे लगता रहा जैसे हल्का-हल्का बुख़ार चढ़ रहा हो।"

"मगर जिस्म में तो बुख़ार नहीं है।"

भाटिया ने ठंडी साँस ली और करवट बदलकर बोला, "बुख़ार हो जाता तो कोई ख़बर करने तो आता।" और वह धीरे-धीरे गुनगुनाने लगा, "पग घुँघरू बाँध मीरा नाची रे ! नाची रे, नाची रे, नाची रे···!"

मैं उसकी ओर देखता रहा।

"यह गीत उसने रात को सुनाया था।" वह सीधा हो गया।

"अच्छा गाती है ?"

"अच्छा ?····उसका गला बिलकुल रीटा हेवर्थ से मिलता है।"

"तो है आशा ?"

"आशा ?" वह बहुत ऊँचाई से मुस्कराया और उसकी आँखें रोमियो की तरह भावपूर्ण हो उठीं।

अगले दिन से भाटिया की मेज़ पर घोड़ों की सूचियों, घुड़दौड़-सम्बन्धी पुस्तकों और छोटे-बड़े अख़बारों का ढेर जमा होने लगा। भाटिया दिन-भर पेंसिल मुँह में चबाता हुआ पूना और बम्बई की पिछली रेसों के परिणाम मिलाता रहता, शाम को कैप्टेन केशव के यहाँ चला जाता, और वहाँ से लौटकर आता तो उसे आधी रात तक वही बुखार चढ़ा रहता।

इतवार को मैं भाटिया को किशमिश, चिलग़ोज़ों और काग़ज़ों के

बीच काम करते छोड़कर एक मित्र के यहाँ खाना खाने चला गया। शाम को मैं लौटकर आया तो सारे कमरे में धुआँ भर रहा था। भाटिया बाल्कनी में बैठा आग में काग़ज़ जला रहा था। जले हुए काग़ज़ कमरे में इधर-उधर फैल रहे थे।

"घर जलाने के लिए इतना तरद्दुद करने की क्या ज़रूरत है, भाटिया ?" मैंने बाल्कनी की ओर बढ़ते हुए कहा। "वैसे ही तेल छिड़क-कर दियासलाई दिखा देते।"

"मैं काग़ज़ जला रहा हूँ," भाटिया तीखे स्वर में बोला।

"यह तो मैं भी देख रहा हूँ कि तुम काग़ज़ जला रहे हो। बाकी सब कुछ ये काग़ज़ जला देंगे।"

अब भाटिया को ख़तरे का अहसास हुआ। वह बाल्कनी का दरवाजा बन्द करके जूते से जलते हुए कागज़ों को मसलने लगा। इस चेष्टा में उसकी पतलून का पायँचा जल उठा। भाटिया चीख़कर फ़र्श पर बैठ गया। बाकी कागज़ों को मैंने जूते से मसल दिया। अब मैंने लक्षित किया कि भाटिया की सप्ताह-भर की मेहनत उन अधजले काग़ज़ों में से झाँक रही है।

"यह क्या किया, भाटिया ?" मैंने पूछा।

भाटिया अलमारी से पेटेंट मरहम निकाल लाया। उसे जली हुई खाल पर मलता हुआ बोला, "मुझे आज आत्म-हत्या कर लेनी चाहिए।"

"आत्म-हत्या तो ख़ैर बाद की चीज़ है," मैंने कहा। "पहले यह तो बताओ हुआ क्या है।"

"होना रह क्या गया है ?" वह मरहम और ज़ोर से रगड़ने लगा।

"कुछ बताओगे भी ?"

"बताऊँ क्या ?" वह बोला। "यही समझ लो कि मैं कुचला गया, मारा गया और दफ़ना दिया गया।"

"बहरहाल यह भी बता दो कि किस तरह कुचले, मारे और दफ़ना दिये गए ?"

"कैप्टेन केशव का दिल्ली तबादला हो गया है।"

मैं भी उसके पास फ़र्श पर बैठ गया, क्योंकि यह वाक़ई मातम का मुकाम था।

"वे कब जा रहे हैं?"

"इसी सप्ताह।"

"और रेस कार्ड?"

"वह तुम्हारे सामने है," भाटिया ने जले हुए काग़ज़ों की ओर संकेत कर दिया।

"वह भी जा रही है?"

भाटिया ने मरहम की डिब्बी बन्द की और ठण्डी साँस ली। बोला, "वह भी चली जाती तो ज़हर खाना आसान हो जाता।"

हवा के झोंके से बहुत-सी कालिख उड़कर कमरे में फैल गई। उसी समय दरवाज़ा खुला और रंगमंच पर गोपूमल ने प्रवेश किया।

"आज मेरे लिए रुपया लाया है?" उसने आते ही पूछा। फिर आस-पास फैली हुई कालिख़ को देखकर उसने नकारात्मक भाव से सिर हिलाया।

"अभी रुपया नहीं मिला," भाटिया बाहर की तरफ़ देखने लगा।

"आज भी नहीं मिला?"

"नहीं।"

"किसी दिन मिलेगा भी?"

"जिस दिन मिलेगा, उसी दिन तुझे दे दूँगा।"

"मगर मिलेगा किस दिन, यह भी तो कुछ पता चले।"

भाटिया चुप रहा।

गोपूमल मुझे लक्ष्य करके बोला, "इस शख्स का भेजा ख़राब है!"

'मेरी तकदीर खराब है!" भाटिया ने संशोधन किया।

"एक ही बात है," गोपूमल ने निष्कर्ष निकाला और क्षण-भर रुककर बोला, "तू मेरी बात मान, और ब्याह करा ले। ब्याह में लड़की

मिलेगी और तीन हज़ार रुपया मिलेगा। कपड़े-लत्ते मिलेंगे सो अलग। बोल, करूँ बात ?"

"मैं ब्याह करूँ, मैं ?" भाटिया की आँखें गुस्से से चमक उठीं। "मैं ब्याह करूँगा, जब तीन-तीन हज़ार रुपया मेरी रोज़ की आमदनी होगी। एक गोपूमल मेरे आगे चलेगा, और एक पीछे। तेरा दो सौ रुपया मेरे लिए दो कौड़ी के बराबर है। किसी भी दिन लाकर तेरे सामने फेंक दूँगा।"

"तो आज ही क्यों नहीं लाकर फेंक देता ?" गोपूमल भी गरम हुआ।

"आज मेरे पास नहीं है।"

"तो किसी दिन होगा भी ?"

"पता नहीं।" और भाटिया शीशे के सामने जाकर कंघी करने लगा। गोपूमल उसके पीछे जा खड़ा हुआ।

"क्या बात है ?" भाटिया खीझकर बोला।

"तेरी सूरत देख रहा हूँ।"

"मेरी सूरत में देखने को क्या है ?"

"यही तो मेरी समझ में नहीं आता," कहता हुआ गोपूमल सीढ़ियों में पहुँच गया। आधी सीढ़ियों से उसकी आवाज़ आयी, "घर में नहीं भूसा, नाम मेरा मूसा।"

कुछ दिन बाद मुझे वह फ़्लैट छोड़ देना पड़ा, क्योंकि भाटिया एक मारवाड़ी से पाँच हज़ार रुपया पगड़ी लेकर वह जगह उसे दे देने की सोच रहा था। उसके बाद छः महीने भाटिया से मुलाकात नहीं हुई। एक दिन अचानक वह एक पुस्तकों की दुकान में मिल गया। वह तीन पुस्तकें बेचने के लिए लाया था—बाल रूम डांसिंग, आर्ट आफ़ पब्लिसिटी, और इंश्योरेंस गाइड !

दुकानदार ने तीनों पुस्तकों के तीन रुपये देने को कहा।

"तीनों पुस्तकें बिलकुल नयी हैं," भाटिया उससे तर्क करने लगा।

दुकानदार उसके तर्क का उत्तर न देकर दूसरे ग्राहक से बात करने लगा।

"चार रुपये दोगे ?" भाटिया ने पूछा।

मगर दुकानदार दूसरे ग्राहक से बात करता रहा।

"अच्छा लाओ, साढ़े तीन में सौदा कर लेते हैं," भाटिया कुछ क्षण प्रतीक्षा करने के बाद बोला।

मगर दुकानदार ने ध्यान नहीं दिया।

"ख़ैर लाओ, तीन ही रुपये दे दो !" और भाटिया ने किताबें आगे बढ़ा दीं।

दुकानदार ने चुपचाप किताबें उठा लीं और तीन रुपये निकालकर दे दिये। भाटिया दुकान से बाहर निकला तो मैं भी उसके साथ बाहर आ गया। भाटिया के गालों पर ख़ुश्की झलक रही थी। उसकी पतलून में क्रीज़ नाम की चीज़ थी ही नहीं, और कमीज़ का कालर सिरे से ग़ायब था।

"क्या हाल है भाटिया ?" मैंने उसके कंधे पर हाथ रखकर पूछा।

"फ़ाइन !" और वह ओंठों पर एक अधूरी-सी मुस्कराहट ले आया।

"ये किताबें क्यों बेच रहे थे ?"

"यूँ ही...... पैसों की ज़रूरत थी।"

"इन दिनों डांस सीखते रहे हो क्या ?"

"नहीं, सिर्फ़ दो-एक दिन गया था।" और उसके चेहरे से मुस्कराहट ग़ायब हो गई।

"फिर ?"

"लड़की के साथ नाचना अच्छा नहीं लगा, छोड़ दिया।"

"और पब्लिसिटी का क्या चक्कर था ?"

"पब्लिसिटी ब्यूरो में नौकरी की आशा थी।"

"फिर ?"

"नहीं मिली।"

"और कुछ ?"

"इंश्योरेंस की एजेंसी ली थी।"

"कुछ काम किया ?"

"एक दोस्त का केस मिल रहा था, पाँच हज़ार का, मगर..."

"मगर...?"

"मगर उसकी बीवी नहीं मानी।"

"तो आजकल क्या कर रहे हो ?"

"आजकल ?...... आजकल आराम कर रहा हूँ।"

बात करते-करते हम लोग फ़्लोरा फ़ाउंटेन के ट्राम स्टैण्ड के पास पहुँच गए थे।

"यहाँ से ट्राम में जाओगे ?" मैंने पूछा।

"हाँ, होटल की तरफ़ जा रहा हूँ," वह बोला।

"किस होटल में रहते हो ?"

"इम्पीरियल गेस्ट हाऊस में।"

"फ़्लैट दे दिया ?"

"मुद्दत हो गई।"

"तो पगड़ी का रुपया नहीं मिला ?"

"पाँच हज़ार मिला था।"

"फिर किताबें क्यों बेच रहे थे ?"

"वह पाँच हज़ार तो कब का ख़र्च हो गया।"

"ख़र्च हो गया ? चार-पाँच महीने में तुमने पाँच हज़ार ख़र्च कर दिया ?"

"किया क्या, हो गया।"

"अपने-आप हो गया ?"

"कुछ रेस में चला गया, कुछ पिछला कर्ज़ा चुकाने में, और कुछ होटल के बिल देने में। होटल का इस महीने का बिल अभी बाकी है।"

"उसके लिए अपना जिस्म नीलाम करोगे ?"

"नहीं, अँगूठी और घड़ी बेच दूँगा।"

उसकी अँगूठी और घड़ी की तरफ़ मेरा ध्यान पहले नहीं गया था। अँगूठी के नग पर सुनहरा एल् बना हुआ था।

"एल् स्टैण्ड्स फ़ॉर लव ?" मैंने पूछा।

"लीना के लिए बनवाई थी," भाटिया ने दूसरी ओर देखते हुए कहा।

"तो उसे दी नहीं ?"

"नहीं... वह...," उसने दोनों हाथ पतलून की जेबों में डाल लिये और ओंठों पर ज़बान फेरी।

मैं उसकी ओर देखता रहा।

"वह कहती थी कि वह सगाई की अँगूठी के अलावा और अँगूठी पहनना पसन्द नहीं करती।"

"तो तुम लोगों की सगाई हो गई ? कब हुई ?"

भाटिया ने आँखें दाईं ओर से बाईं ओर कर लीं। फिर ओंठों को ज़बान से और गीला करता हुआ बोला, "मेरी सगाई इसी महीने हुई है। ...उसकी सगाई को दो साल हो गए।"

"क्या ?" मेरा चेहरा प्रश्नसूचक चिह्न-सा बन गया।

"उसकी सगाई हवाई सेना के एक अफ़सर के साथ हो चुकी है।"

"पर तुम तो कहते थे कि...।"

भाटिया ने निचले ओंठ को दाँतों में चबा लिया। हम दोनों कुछ क्षण ख़ामोश रहे।

"कोल मोती, रेस कार्ड ! रेस कार्ड, कोल मोती !" यह आवाज़ सुनकर भाटिया सहसा चौंक गया। रुपये-रुपये के तीन नोटों में से सबसे घिसा हुआ नोट निकालकर उसने दोनों कार्ड ख़रीद लिये, और उसकी नज़र घोड़ों की सूचियों पर दौड़ने लगी।

"अभी भी रेस पर जाने का इरादा है ?" मैंने पूछा।

एक तिरस्कार-सूचक 'हुँ' के साथ भाटिया ने दाँत भींच लिये।

"मेरा कहने का मतलब था कि···।"

"जितना पैसा गया है, वह किसी तरह वापस भी तो आएगा···।" भाटिया का चेहरा सख़्त हो गया।

"और उसे वापस लाने के लिए पैसा ?"

"उसके लिए भी पैसा आ रहा है, पन्द्रह दिन के अन्दर।"

"कोई लॉटरी निकली है ?"

"नहीं। ब्याह हो रहा है। तीन हज़ार रुपया नक़द मिलेगा।"

मेरा ध्यान उसके माथे की फूली हुई नसों की ओर चला गया।

"लड़की देखी है ?"

भाटिया ने सिर हिलाया।

"कैसी है ?"

"ठीक है !" और उसका चेहरा और सख़्त हो गया।

कोलाबा की ट्राम आकर खड़ी हो गई थी। भाटिया ने हाथ बढ़ा दिया। मैंने उसका हाथ दबाते हुए पूछा, "तो ब्याह की पार्टी कब दे रहे हो ?"

ट्राम झटके से चल पड़ी और भाटिया दौड़कर उस पर सवार हो गया। चलती ट्राम से उसने हाथ हिलाते हुए कहा, "पहली तारीख़ को।"

और ट्राम के ज़रा आगे निकलते ही उसकी आँखें फिर रेस-कार्ड पर स्थिर हो गईं।

वासना की छाया में

पुष्पा मेरी ओर दो कौड़ियों का एक दाँव फेंककर मुस्करायी। उसकी मुस्कराहट ने मुझसे कहा—तुम बेवकूफ़ हो। बापू की गालियाँ बेटी को नहीं लगा करतीं···

पहले-पहल पुष्पा को मैंने घर के सामने पम्प पर पानी भरते देखा था। उसकी आँखें मुझे पतली कौड़ियों जैसी लगीं। उसने दो-तीन बार आँख भरकर मुझे देखा तो मुझे लगा कि या तो मेरे बाल बहुत सफ़ेद हो गए हैं, या मैं अपनी उम्र से चार-पाँच साल छोटा लगता हूँ। नहीं तो कोई कारण नहीं था कि वह उस सहज विश्वास-भरी दृष्टि से मुझे देखती, मानो कह रही हो, 'चलो, आँखमिचौनी खेलते हो?'

पुष्पा की उम्र तेरह साल होगी। अधिक-से-अधिक चौदह साल होगी। उसका रंग गोरा पंजाबी था। उसके शरीर को पूरा खिलने में दो-तीन साल रहते थे, फिर भी उसकी आँखों में वह विस्मय भर गया था जो यौवन का अर्थ पहले-पहले समझने पर कुछ दिनों के लिए रहता है। उसे जैसे आश्चर्य था कि क्या वह अकेली ही जानती है कि गुलाब का रंग गुलाबी क्यों है?

"आप पानी भर लीजिए," पुष्पा ने अपनी बालटी हटाकर मुझसे कहा।

"नहीं, तू भर ले," मैंने यह सोचकर कहा था कि शायद वह मेरे सफ़ेद बालों का सम्मान कर रही है।

"आपको दफ़्तर जाना है, आप भर लीजिए," उसने कहा। मुझे ख़ुशी हुई कि उसे मेरे अस्तित्व का पता है, काम काज का पता है और उसका लिहाज़ मेरे सफ़ेद बालों तक सीमित नहीं।

"तेरा नाम क्या है?" मैंने अपनी बालटी में पानी भरते हुए पूछा।

"पुष्पा," उसने संकोच के साथ उत्तर दिया।

"किस क्लास में पढ़ती है ?"

वह और भी संकुचित हो गई। बिना मेरी ओर देखे बोली, "मैं स्कूल नहीं जाती।"

"क्यों ?" मुझे आश्चर्य हुआ कि इतनी अच्छी आँखों वाली लड़की स्कूल क्यों नहीं जाती ? यूँ मैं किसी लड़की से ज़्यादा सवाल नहीं करता, क्योंकि वे ज़रा-से परिचय को घनिष्ठता समझने लगती हैं। पर पुष्पा अभी उस रेखा से दूर थी जहाँ जाकर एक लड़की मेरे लिए लड़की बन जाती है।

"मैं यहाँ नहीं रहती," पुष्पा ने इस तरह कहा जैसे मेरा प्रश्न बिलकुल असंगत रहा हो। "मैं बापू के साथ गाँव से आयी हूँ। बापू को यहाँ थोड़ा काम है। उसका काम हो जायगा तो हम अपने गाँव चले जायँगे।"

मैंने देखा कि उसकी आँखों ने अभी लजाना नहीं सीखा। उसके अन्दर अभी वही ताज़गी थी जो नयी बहार की फलियों में होती है। वह गाँव से आयी थी और गाँव चली जायगी। वहाँ जाकर सरसों के पीले-पीले फूलों से खेलेगी और मीठा नरम साग खाएगी। कोई रात को आग के पास हीर गाएगा और वह विभोर होकर सुनेगी। नहीं तो सरसराती हवा का संगीत ही सही—वह उसके रोम-रोम को थपथपाकर उसे सुला देगा।

सुबह उठकर वह पशुओं को चारा देगी। प्रभात के स्वर उसे फुसलाएँगे तो वह नंगे पैरों नदी की ओर भाग जायगी। जब तक मन में आएगा वहाँ तैरती रहेगी। लौटती हुई वह धान के खेत से मूलियाँ और शलजम उखाड़ लाएगी। उसके गीले बाल रूखे ही सूख जायँगे, पर उसे चिन्ता न होगी। उसके फूटते हुए वक्ष उसकी गीली कमीज़ में कटोरियाँ सी निकाल देंगे, पर उसे उसकी होश न होगी। वह घर लौटकर गणित के प्रश्नों से नहीं उलझेगी। भूगोल की रेखाएँ नहीं याद करेगी। कोश लेकर कविताओं के अर्थ नहीं ढूँढ़ेगी। वह जिधर देखेगी, उधर कविताएँ फूटने लगेंगी।

अचानक मैंने देखा कि मैं पम्प चलाये जा रहा हूँ, हालाँकि बालटी भर चुकी है और पानी इधर-उधर बिखर रहा है। अपनी अन्यमनस्कता छिपाने और पुष्पा के सौजन्य का बदला चुकाने के लिए मैंने अपनी बालटी उठाई और उसका सारा पानी पुष्पा की बालटी में डाल दिया।

"ऊई!" वह एक क़दम पीछे हट गई, "मेरी बालटी छू गई।"

"छू कैसे गई?" मैंने लज्जा और अपमान महसूस करते हुए पूछा।

पुष्पा ने मेरे छिले हुए भाव को भाँप लिया। उसने क्षमा माँगने के ढंग से कहा, "जी, मैं बालटी माँजकर लाई थी। आपकी बालटी मँजी हुई नहीं थी।"

यह सुनकर मेरी आत्मा फिर उदार हो गई। मैंने अपने को याद दिलाया कि बालटी को राख से मला जाय, तभी जाकर वह पवित्र होती है। फिर चाहे ग़लीज़ फ़र्श पर रखकर उसमें पानी भरो, चाहे चवायी हुई दातुनों के ढेर पर।

"मेरी बालटी भी मँजी हुई थी, मैंने सबेरे माँजी थी," मैं झूठ बोला। झूठ बोलना मेरी आदत है। बिना कारण के झूठ बोलता हूँ। दिन में कई-कई बार बोलता हूँ। यह मुझे अच्छा भी लगता है, मैं सच कह रहा हूँ।

जो मुँह से झूठ नहीं बोलता, वह मन में झूठ बोलता है। जो मन में झूठ बोलता है, वह मुझसे ज्यादा खतरनाक है। क्योंकि वह सच का दावेदार है, इसलिए वह और भी झूठा है।

पुष्पा ने मुस्कराकर बालटी का पानी गिरा दिया और ज़मीन से मिट्टी उखाड़कर बालटी को मलने लगी। मैं अपनी बालटी में फिर से पानी भरने लगा।

किसी ने दूर से उसे पुकारा, "पप्पीऽ!"

"आयी बापूऽ!" उसने पुकारकर उत्तर दिया।

"अभी पानी नहीं भरा?"

"नहीं बापू ऽ!"

"जल्दी कर, सिरमुंडीऽ।"

मैंने उधर देखा। एक लम्बा बूढ़ा जाट सामने की कोठी के बरामदे में खड़ा सिर पर पगड़ी लपेट रहा था। एक तो उसकी आवाज़ बहुत कर्कश थी, दूसरे उसकी सफ़ेद दाढ़ी ऐसी नोकदार थी, जैसे उसी से वह मुर्गियाँ झटकता रहा हो! उसकी आँखों का रंग बतलाता था कि उसने रात को खूब शराब पी है, क्योंकि नशा अभी तक उसकी पुतलियों में तैर रहा था। पगड़ी लपेटकर उसने दाढ़ी पर हाथ फेरा और पुष्पा को फिर आवाज़ दी, "जल्दी कर, लाड़ की बच्ची, नहीं तेरा झोंटा सेंकूँ!"

यह देखकर कि मेरी बालटी अभी आधी भरी है, मैं जल्दी-जल्दी पम्प चलाने लगा। जाट ने पीठ मोड़ ली। पुष्पा मेरी ओर दो कौड़ियों का एक दाँव फेंककर मुस्कराई। उसकी मुस्कराहट ने मुझसे कहा, "तुम बेवक़ूफ़ हो। बापू की गालियाँ बेटी को नहीं लगा करतीं।"

उसके बाद दो-तीन बार फिर मैंने पुष्पा को देखा। न जाने क्यों उसे देखकर हर बार मुझे गहरे लाल रंग के मख़मली फूल याद आ जाते। बचपन में मैं वे फूल अपने कोट पर लगाया करता था।

दो-तीन बार पुष्पा के बापू को भी मैंने देखा—दातुन करते, जूड़ा बाँधते या गालियाँ बकते। उसकी मुझ पर कुछ ऐसी छाप पड़ी जैसे बरसात होकर हटी हो और पुराने गले हुए टीन के छप्पर पर से महीनों का सूखा बीट पानी के साथ गल-गलकर टपक रहा हो।

उस दिन दफ़्तर से लौटते हुए मैं अड्डा नकेदर से फ़र्लांग-भर आया था जब मैंने लक्षित किया कि सफ़ेद दाढ़ी वाला वह जाट मुझसे दो क़दम हटकर साथ-साथ चल रहा है। मैं ज़रा तेज़ चलने लगा। वह भी तेज़ चलने लगा। मैंने चाल धीमी कर दी। उसने भी चाल धीमी कर दी।

मुझे यह कभी सह्य नहीं कि मैं सड़क पर किसी के साथ-साथ चलूँ, क्योंकि मैं जिसके साथ चलता हूँ, वह अपेक्षा करता है कि मैं उसी की

तरह चलूँ और उसी की तरह सोचूँ। पर कोई मेरे साथ साथ चले तो यह मुझे बहुत अच्छा लगता है, क्योंकि वह मेरी तरह चलता है और अपनी तरह सोचता है।

"कहाँ चल रहे हो, बाबूजी ?" पुष्पा के बापू ने मेरा ध्यान अपनी ओर खींचने के लिए पूछा।

"मॉडल टाउन," मैंने इस अन्दाज़ में कहा कि वह जान ले कि मैं एक महत्त्वपूर्ण व्यक्ति हूँ, और सिर्फ़ इसलिए पैदल चल रहा हूँ कि मुझे संध्या के समय पैदल घूमने का शौक है।

"हम भी वहीं चल रहे हैं। डॉक्टर गुरबख़्शसिंह मदान को जानते हैं ? वे हमारे ही गाँव के हैं। शहर में आकर हमारा उन्हीं के घर डेरा होता है।" फिर पास आकर बोला, "चलो राह चलते एक से दो भले।"

मैंने कहना तो चाहा कि मेरे साथ चलने में उसे भले ही लाभ हो, उसके साथ चलने में मुझे कोई लाभ नहीं, पर इसलिए नहीं कहा कि कहीं दोआबा का जाट जोश में आकर मेरे सिर का पंजाब न बना दे।

"आप इधर के ही हैं ?" जाट ने अब परिचय बढ़ाने की चेष्टा की।

"नहीं," मैंने उत्तर दिया।

"तो जालन्धर में कब से हैं ?"

मैंने उचित समझा कि वह जितने सवाल पूछ सकता है, उन सबका उत्तर एक साथ ही उसे दे दूँ, जिससे उसकी जिज्ञासा पूरी शान्त हो जाय। इसलिए मैंने कहा कि मैं दो महीने से यहाँ हूँ। सेक्रेटेरियट में असिस्टेंट सुपरवाइज़र हूँ। वेतन एक सौ बीस रुपया है। ऊपरी आमदनी हो जाने की आशा है। अभी ब्याह नहीं हुआ। लड़की देख रहा हूँ। पढ़ाई की चौदह जमातें पास की हैं। तरकारियों में मुझे गोभी पसन्द है। फलों में मैं आम पसन्द करता हूँ। हर इतवार को शरीर पर कड़वे तेल का मालिश करता हूँ। मेरी रोटी एक गढ़वाली पकाता है। उसकी उम्र चालीस साल है। मेरे बरतन उसकी लड़की मलती है। उसकी उम्र बीस साल है।

यह सब उसे सुनाकर मैंने मन में कहा कि पूछ ताऊ, अब क्या पूछता है।

पर जाट ने फिर भी पूछा, "क्योंजी, गढ़वाली ने अभी तक लड़की का ब्याह नहीं किया ?"

यह हद थी ! मगर मैंने धैर्य नहीं छोड़ा। सन्तोष-असन्तोष अपने घर की चीज है, पर पीठ का दर्द जाकर डॉक्टर को दिखलाना पड़ता है। मुझे अपनी आत्मा पर इस बात का गर्व है कि वह हवा का रुख देखकर फ़ौरन तिरछी से सीधी हो जाती है। मैंने जाट का प्रश्न बिलकुल स्वाभाविक समझकर उसका स्वाभाविक-सा उत्तर दिया, "उसकी लड़की विधवा है।"

"अच्छा जी, विधवा है ? फिर तो वह उसे दूसरी जगह बिठाएगा।"

मैं आधुनिक इतिहास का विद्यार्थी होता तो गढ़वाली से पूछ रखता कि वह अपनी लड़की को दूसरी जगह बिठाएगा या नहीं। पर इतिहास में मेरी रुचि तैमूरलंग की लड़ाई तक ही रही है, उससे आगे नहीं। फिर भी जाट को उत्तर देना आवश्यक था। उसकी मूँछों के बाल अँगड़ाइयाँ लेने लगे थे। मैंने रास्ता काटने की नीयत से कहा, "वह देख-भाल तो कर रहा है। आगे लड़की की तक़दीर है।"

"लड़की देखने में अच्छी है ?" जाट ने पूछा।

"देखने में अच्छी है और स्वभाव की भी मीठी है," मैंने इसलिए कहा कि कम-से-कम बात में तो थोड़ा रोमांस रहे।

"अच्छा जी !" जाट बोला, "सच पूछो तो सबसे बड़ा गुण यही है। काम अच्छा करती है ?"

"काम में वह सुस्त है। हाँ बातें बहुत करती है।"

"अच्छा जी !" जाट बोला। "रगों में जवानी हो तो काम नहीं सुहाता।"

उसकी टिप्पणी का मज़ा लेते हुए मैंने उसकी ओर देखा तो उसकी

आँखों में भूखी बिल्ली की-सी जलन दिखाई दी। उसके ओंठ बूढ़ी वासना की लार से गीले हो रहे थे। उसका रस-भंग करने के लिए मैंने रुककर जूतों को झाड़ा और कहा, "इन कच्चे रास्तों पर सरदारजी, जूतों का तो कचूमर निकल जाता है।"

जाट ने मेरे अभिनय और शब्दों की ओर ध्यान नहीं दिया। अपनी ही धुन में कहा, "बाबूजी, आज आपके गढ़वाली से मुलाकात हो सकती है?"

"क्यों?" मैंने उसकी ओर देखकर पूछा। मुझे लगा कि वासना का लार चू-चूकर जम गया है और इन्सान के आकार में धरती पर रेंग रहा है।

"मुझे एक ज़मींदारनी की ज़रूरत है, बाबूजी!" जाट ने कहा। "मैं ज़मींदार हूँ। पास के गाँव में मेरी चार एकड़ ज़मीन है। पाँच एकड़ ज़मीन ज़िला करनाल में है। मैं यहाँ के गाँव का लम्बरदार हूँ। घरवाली मर गई है। एक जवान लड़की है। उसका ब्याह कर दूँ तो मेरी देख-भाल करने वाला कोई नहीं है। घर में एक गाय और दो भैंसें हैं। घरवाली आ जाय तो उनका चारापानी हो जायगा और मेरी भी दो रोटियाँ हो जायँगी।" फिर उसने मेरी बाँह पकड़कर मिन्नत के लहजे में कहा, "आपके गुण गाऊँगा सरकार, मेरा यह काम ज़रूर करा दीजिए।"

वह बोल रहा था तो उसके शब्दों की गूँज अपना अर्थ मुझे और तरह समझा रही थी। वह कह रही थी, "मुझे औरत के गर्म मांस की ज़रूरत है, बाबूजी! मैं चाहे बूढ़ा हूँ, पर मेरे अकेले के पास नौ एकड़ ज़मीन है। घर में गाय-भैंसें और सब-कुछ है, सिर्फ औरत ही नहीं है। मेरी अपनी हड्डियों पर गर्म मांस नहीं रहा, पर बूढ़ी हड्डियाँ गर्म मांस का चारा अब भी माँगती हैं। इनके लिए चारा चाहिए, सरकार, जैसे भी हो सके इनके चारे का प्रबन्ध कर दीजिए।"

किसी तरह गला छुड़ाने के लिए मैंने कहा, "गढ़वाली पंजाबियों के

साथ ब्याह नहीं करते, सरदारजी ! उसका बाप उसे किसी गढ़वाली के घर ही बिठाएगा।" मेरी बात सुनकर जाट ढीला हो गया। उसकी मूँछों के बाल, जो अब तक अँगड़ाइयाँ ले रहे थे, सुस्त होकर बैठ गए। वह ठंडी साँस लेकर बोला, "कहीं भी कामयाबी नज़र नहीं आती। लोग कहते थे कि रिफ़्यूजी कैम्पों से मिल जाती हैं। पर मैं सवा साल से चक्कर लगा-लगाकर हार गया, कोई नहीं मिली। डॉक्टर साहब ने एक पहाड़िन चार सौ में ठीक की थी, वह भी मेरा दाढ़ा देखकर मुकर गई।"

"पर तुमको तो घर की देख-भाल के लिए ही ज़रूरत है न, सरदारजी ?" मैंने कहा। "एक नौकर क्यों नहीं रख लेते ?"

"नौकर उतना काम नहीं दे सकता, बाबूजी ! ज़मींदार का घर है। चार आने वाले, चार जाने वाले। फिर सेवा के लिए एक गाय, दो भैंसें। इतना कुछ तो घरवाली ही सँभाल सकती है।"

"तो तुम चाहते हो कि जवान लड़की आकर तुम्हारे गुर्दे भी दुरुस्त करे और तुम्हारी गाय-भैंसों का दूध भी दुहे ?"

"वह क्यों दुहे सरकार ? वह आराम से घर में बैठे। दूध दुहने को हम क्या मर गए हैं ?"

यह आज़माने के लिए वह अपने को कहाँ तक सौदे में डालता है, मैंने उपदेश के रूप में कहा, "इस उम्र में कोई मिलेगी भी तो ऐसी ही मिलेगी सरदारजी, जो पहले कई घरों में घूम चुकी हो और जिसे दूसरा ठौर-ठिकाना न हो। ऐसी को घर में डाल लोगे ?"

मैंने देखा, जाट की मूँछों के बाल फिर अँगड़ाइयाँ लेने लगे हैं। उसने आगे बढ़कर फिर मेरी बाँह पकड़ ली और बोला, "आपके पास है बाबूजी, ज़रूर आपके पास कोई है !"

मैंने नहीं सोचा था कि मेरे शब्दों का यह अर्थ भी निकल सकता है। थाड़ा भद्दा पड़कर मैंने स्पष्ट करने के लिए कहा, "यह मतलब नहीं सरदारजी कि मेरे पास कोई है। मैं तो सिर्फ बात के लिए बात कर रहा हूँ।"

"नहीं बाबूजी, आपके पास ज़रूर कोई है," जाट ने विनय और अनुरोध के साथ कहा। "मेरी पगड़ी अपने पैरों पर समझो और मेरा काम करा दो। दो-चार सौ मैं आपके सिर से वार दूँगा—एक बार अपने मुँह से कह दो कि है।"

मैंने जाट को फिर सिर से पैर तक देखा। उसकी भौंहें सफ़ेद हो रही थीं। आँखें छोटी होकर केवल दाग़ कर गई थीं। गालों का मांस लटक आया था। दाँत आधे टूट चुके थे। जो दाँत शेष थे, उनकी जड़ों में लहू रिस-रिसा रहा था। बोलते-बोलते उसका थूक दाढ़ी के सफ़ेद-बालों में फैल गया था और वह मुझसे विश्वास माँग रहा था कि मैं कह दूँ, है—एक औरत है, जो उसके लिए चारा बन सकती है, जो अपना यौवन राँधकर उसे खिला सकती है, क्योंकि वह ज़मींदार है और उसके घर में एक गाय और दो भैंसें हैं, और उसकी हड्डियों में जितना ज़ोर है, उससे कहीं अधिक उसकी गाँठ में पैसा है।

"बोले नहीं बाबूजी ?" जाट व्याकुल उत्सुकता के साथ बोला।

"मैं किसी को नहीं जानता सरदारजी," मैंने धीरे से उत्तर दिया।

मॉडल टाउन अब सामने ही था। पक्की सड़क पर जाकर मेरी नज़र पुष्पा पर पड़ी जो बरामदे में खड़ी अपने बापू की प्रतीक्षा कर रही थी।

मुझे फिर लाल फूल याद हो आए। मैंने जाट की ओर देखकर पूछा, "तुम अभी कुछ दिन तो हमारे पड़ौसी हो न, सरदारजी ?"

"नहीं जी, हम कल अपने गाँव जा रहे हैं," जाट ने कहा। "यहाँ अब किसके भरोसे बैठे रहें ? वहीं चलकर देख-भाल करेंगे। और नहीं तो बदले में ही कोई लड़की देखेंगे..."

"बदले में ?" मैंने हैरान होकर पूछा।

"हमारे में यह रिवाज है, बाबूजी ! बराबर का रिश्ता हो तो दो घर आपस में लड़कियाँ बदल लेते हैं। मैं जाकर अपने जैसा ही कोई घर देखूँगा।"

मैंने देखा पुष्पा प्रतीक्षा कर रही है। बापू जो गाली देता है, वह गाली उसे नहीं लगती। पर बापू जो गाली नहीं देता, वह गाली उसे लग रही है।

परमात्मा का कुत्ता

वह सहसा रुका और ज़ोर से हँसा।
"यारो, बेहयाई हज़ार बरकत है!"...

बहुत से लोग यहाँ-वहाँ सिर लटकाये बैठे थे, जैसे किसी का मातम करने के लिए जमा हुए हों। कुछ लोग साथ लाई हुई पोटलियाँ खोलकर खाना खा रहे थे, दो एक व्यक्ति पगड़ियाँ सिर के नीचे रखकर कम्पाउण्ड के बाहर सड़क के किनारे बिखर गए थे। चने-कुलचे वाले का रोज़गार गर्म था, और कमेटी के नल के पास छोटा-मोटा क्यू लगा था। नल के पास कुर्सी डालकर बैठा हुआ अर्ज़ीनवीस धड़ाधड़ अर्ज़ियाँ टाइप कर रहा था। उसके माथे से पसीना बहकर उसके ओंठों पर आ रहा था, लेकिन उसे पोंछने की उसे फ़ुरसत नहीं थी। सफ़ेद दाढ़ियों वाले दो-तीन लम्बे जाट, अपनी लाठियों पर झुके हुए उसके ख़ाली होने की प्रतीक्षा कर रहे थे। धूप से बचने के लिए लगाया हुआ उसका टाट हवा से उड़ा जा रहा था और थोड़ी दूर मोढ़े पर बैठा हुआ उसका लड़का अपनी अंग्रेज़ी प्राइमर को रट्टा लगा रहा था—सी ए टी कैट, कैट माने बिल्ली, बी ए टी बैट, बैट माने बल्ला, एफ़ ए टी फ़ैट, फ़ैट माने मोटा...। कमीज़ों के बटन आधे खोले हुए और फ़ाइलें बग़ल में दबाये हुए कुछ बाबू, एक-दूसरे से छेड़ख़ानी करते हुए रजिस्ट्रेशन ब्रांच से रिकार्ड ब्रांच की तरफ़ जा रहे थे। लाल बेल्ट वाला चपरासी आस-पास की भीड़ से उदासीन अपने स्टूल पर उकड़ू होकर बैठा मन-ही-मन कुछ हिसाब कर रहा था। कभी उसके ओंठ हिलते थे और कभी उसका सिर हिल जाता था। सारे कम्पाउण्ड में सितम्बर की खुली धूप फैली थी। चिड़ियाँ डालों से कूदने और फिर ऊपर को उड़ने का अभ्यास कर रही थीं और कौए

पोर्च के सिरे पर चहलक़दमी कर रहे थे। एक सत्तर-पिचहत्तर की बुढ़िया, जिसका सिर हिल रहा था और चेहरा झुर्रियों के गुंझल के सिवा कुछ नहीं था, लोगों से पूछ रही थी कि वह अपने लड़के के मरने के बाद उसके नाम एलाट हुई ज़मीन की हकदार है या नहीं...।

अन्दर हॉल कमरे में फ़ाइलें धीरे-धीरे हिल रही थीं। दो-चार बाबू बीच की मेज़ के पास जमा होकर चाय पी रहे थे। उनमें से एक दफ़्तरी काग़ज़ पर लिखी हुई अपनी ताज़ा ग़ज़ल यारों को सुना रहा था, और यार इस विश्वास के साथ सुन रहे थे कि वह ज़रूर उसने 'शमा' या 'बीसवीं सदी' के किसी पुराने अंक में से चुराई है।

"अज़ीज़ साहब, ये शेर आपने आज ही कहे हैं या दो-तीन साल पहले कहे हुए शेर आज अचानक याद आ गए हैं?" साँवले चेहरे और घनी काली मूँछों वाले एक बाबू ने बाईं आँख को ज़रा-सा दबाकर पूछा। आस-पास सब लोगों के चेहरे खिल गए।

"यह मेरी बिलकुल ताज़ा ग़ज़ल है," अज़ीज़ साहब ने अदालत के कटहरे में खड़े होकर हलफ़िया सच बोलने के लहजे में कहा, "इससे पहले इसी वज़न पर कोई और चीज़ कही हो तो याद नहीं।" और आँखों से सबके चेहरों को टटोलते हुए उन्होंने हल्की-सी हँसी के साथ कहा, "अपना दीवान तो कभी कोई रिसर्च करने वाला ही मुरत्तब करेगा...।"

एक फ़रमायशी कहकहा लगा जिसे 'शी-शी' की आवाज़ों ने बीच में ही दबा दिया। क़हक़हे पर लगायी गई इस ब्रेक का मतलब था कि कमिश्नर साहब अपने कमरे में तशरीफ़ ले आये हैं। कुछ क्षणों का वकफ़ा रहा, जिसमें सुरजीत सिंह वल्द गुरमीत सिंह की फाइल एक मेज़ से एक्शन के लिए दूसरी मेज़ पर चली गई, सुरजीत सिंह वल्द गुरमीत सिंह मुस्कराता हुआ हॉल से बाहर चला गया, और जिस बाबू की मेज़ से फाइल गई थी, वह नये पाँच रुपये के नोट को सहलाता हुआ चाय पीने वालों के जमघट में आ शामिल हुआ। अज़ीज़ साहब अब काफ़ी धीमी आवाज़ में अपनी ग़ज़ल का अगला शेर सुनाने लगे।

साहब के कमरे की घण्टी हुई। चपरासी मुस्तैदी से उठकर कमरे में गया और उसी मुस्तैदी से बाहर आकर अपने स्टूल पर बैठ गया।

चपरासी से खिड़की का पर्दा ठीक कराकर कमिश्नर साहब ने मेज़ पर रखे हुए काग़ज़ों पर एक साथ दस्तख़त किये और पाइप सुलगाकर रीडर्ज़ डाइजेस्ट का ताज़ा अंक पढ़ने लगे। लेटीशिया बाल्ड्रिज का लेख कि उसे इतालवी मर्दों से क्यों प्यार है, वे पढ़ चुके थे। और लेखों में हृदय की शल्यचिकित्सा के सम्बन्ध में जे० डी० रैटक्लिफ़ का लेख उन्होंने सबसे पहले पढ़ने के लिए चुन रखा था। पृष्ठ एक सौ ग्यारह खोलकर उन्होंने हृदय के नये ऑपरेशन का ब्यौरा पढ़ना आरम्भ किया।

तभी बाहर शोर सुनाई देने लगा।

कम्पाउंड में पेड़ के नीचे बिखरकर बैठे हुए लोगों में तीन नई आकृतियाँ आ शामिल हुई थीं। एक अधेड़ आदमी था जिसने अपनी पगड़ी नीचे बिछा ली थी और हाथ पीछे को करके और टाँगें फैलाकर उस पर बैठ गया था। पगड़ी के ख़ाली छोर पर एक उससे ज़रा बड़ी उम्र की स्त्री और एक जवान लड़की बैठी थीं, और उनके पास ही खड़ा एक दुबला-सा लड़का अपने आस-पास की हर चीज़ को घूर रहा था। पुरुष की फैली हुई टाँगें धीरे-धीरे पूरी खुल गई थीं और आवाज़ इतनी ऊँची हो गई थी कि कम्पाउण्ड के बाहर से भी बहुत से लोगों का ध्यान उसकी ओर खिंच गया था। वह बोलता हुआ साथ घुटने पर हाथ मार रहा था, "सरकार वक्त ले रही है। दस-पाँच साल में सरकार फ़ैसला करेगी कि अर्ज़ी मंज़ूर होनी चाहिए या नहीं। सालो, यमराज भी तो हमारा वक्त गिन रहा है। उधर वह हमारा वक्त पूरा करेगा और इधर तुम कहना कि तुम्हारी अर्ज़ी पास हो गई है।

चपरासी की टाँगें स्टूल से नीचे उतरीं और वह सीधा हो गया। कम्पाउण्ड में बिखरकर बैठे और लेटे हुए सब लोग अपनी-अपनी जगह पर कस गए। कई लोग पेड़ के पास जमा हो गए।

"दो साल से अर्ज़ी दे रखी है कि सालो, ज़मीन के नाम पर तुमने

मुझे जो गड्ढा एलाट कर दिया है, उसकी जगह मुझे दूसरी ज़मीन दो। मगर दो साल से अर्ज़ी दो कमरे पार नहीं कर पाई !" वह आदमी बोलता रहा। "इस कमरे से उस कमरे में अर्ज़ी के जाने में वक्त लगता है। इस मेज़ से उस मेज़ तक जाने में वक्त लगता है। सरकार वक्त ले रही है। लो मैं आ गया हूँ यहीं पर अपना घर-बार लेकर। ले लो जितना वक्त तुम्हें लेना है।··· सात साल की भुखमरी के बाद मुझे ज़मीन दी है··· सौ मरले का गड्ढा ! उसमें मैं बाप-दादों की अस्थियाँ गाड़ूँ ? अर्ज़ी दी थी कि मुझे सौ मरले के पचास मरले दे दो, लेकिन ज़मीन तो दो। मगर अर्ज़ी दो साल से वक्त ले रही है ! मैं भूखा मर रहा हूँ और अर्ज़ी वक्त ले रही है !"

चपरासी अपने हथियार लिये हुए उठा··· माथे पर तेवर और आँखों में आक्रोश। आस-पास जमा भीड़ को हटाता हुआ वह उसके सामने आ गया।

"ए मिस्टर, चल हियाँ से बाहर !" उसने हथियारों की पूरी चाट के साथ कहा, "चल···उठ···।"

"मिस्टर यहाँ से नहीं उठ सकता !" वह आदमी बोला। "मिस्टर यहाँ का बादशाह है। पहले मिस्टर देश के बेताज बादशाहों की जय बुलाता था। अब वह किसी की जय नहीं बुलाता। अब वह आप बादशाह है··· बेलाज बादशाह। उसे कोई लाज-शरम नहीं है। उस पर किसी का हुक्म नहीं चलता। समझा चपरासी बादशाह ?"

"अभी पता चल जायगा तुझे कि तुझ पर किसी का हुक्म चलता है या नहीं।" चपरासी बादशाह और गरम हुआ, "अभी पुलिस के सुपुर्द कर दिया जायगा तो सारी बादशाही निकल जायगी···।"

"हा-हा !" बेलाज बादशाह हँसा। "तेरी पुलिस मेरी बादशाही निकालेगी ? मैं पुलिस के सामने नंगा हो जाऊँगा और कहूँगा कि निकालो मेरी बादशाही ! हममें से किस-किस की बादशाही निकालेगी पुलिस ? ये मेरे साथ तीन बादशाह और हैं।···यह मेरे भाई की बेवा है—उस

भाई की, जिसे पाकिस्तान में टाँगों से पकड़कर चीरा गया था। यह मेरे भाई का लड़का है, जो अभी से तपेदिक का मरीज़ हो गया है। और यह मेरे भाई की लड़की है, जो अब ब्याहने लायक हो गई है। इसकी बड़ी बहन पाकिस्तान में है। आज मैंने इन सबको बादशाही दे दी है। ले आ तू जाकर अपनी पुलिस कि आकर इन सब की बादशाही निकाल दे। कुत्ता साला···!"

अन्दर से कई-एक बाबू निकलकर बाहर आ गए। 'कुत्ता साला' सुनकर चपरासी आपे-से बाहर हो गया। वह तैश में उसे बाँह से पकड़-कर घसीटने लगा, "अभी तुझे पता चल जाता है कि कौन साला कुत्ता है! मैं तुझे मार-मारकर······" और उसने उसे अपने टूटे हुए बूट की एक ठोकर दी। स्त्री और लड़की सहमकर वहाँ से हट गईं। लड़का रोने लगा।

बाबू लोग भीड़ को हटाते हुए आगे बढ़ आये और उन्होंने चपरासी को पकड़कर हटा लिया। चपरासी बड़बड़ाता रहा, "कमीना आदमी दफ़्तर में आकर गाली देता है। मैं अभी तुझे··"

"एक नहीं तुम सब-के-सब कुत्ते हो," वह आदमी कहता रहा। "तुम भी कुत्ते हो और मैं भी कुत्ता हूँ। फ़र्क सिर्फ इतना है कि तुम सरकार के कुत्ते हो। हम लोगों की हड्डियाँ चूसते हो और सरकार की तरफ़ से भौंकते हो। मैं परमात्मा का कुत्ता हूँ। उसकी दी हुई हवा खाकर जीता हूँ और उसकी तरफ़ से भौंकता हूँ। उसका घर इन्साफ़ का घर है। मैं उसके घर की रखवाली करता हूँ। तुम सब उसकी इन्साफ़ की दौलत के लुटेरे हो। तुम पर भौंकना मेरा फ़र्ज़ है। मेरे मालिक का फ़रमान है। मेरा तुम से अज़ली वैर है। कुत्ते का कुत्ता दुश्मन होता है। तुम मेरे दुश्मन हो, मैं तुम्हारा दुश्मन हूँ। मैं अकेला हूँ, इसलिए तुम सब मिलकर मुझे मारो। मुझे यहाँ से निकाल दो। लेकिन मैं फिर भी भौंकता रहूँगा। तुम मेरा भौंकना बन्द नहीं कर सकते। मेरे अन्दर मेरे मालिक का नूर है, मेरे वाहगुरु का तेज है।

मुझे जहाँ बन्द कर दोगे, मैं वहाँ भौंकूगा और भौंक-भौंककर सबके कान फाड़ दूँगा। साले, आदमी के कुत्ते, जूठी हड्डी पर मरने वाले कुत्ते, दुम हिला-हिलाकर जीने वाले कुत्ते...।"

"बाबा जी, बस करो," एक बाबू हाथ जोड़कर बोला। "लोगों पर रहम खाओ और अपनी यह सन्तबानी बन्द करो। तुम बताओ तुम्हारा केस क्या है, तुम्हारा नाम क्या है...?"

"मेरा नाम है बारह सौ छब्बीस बटा सात! मेरे माँ-बाप का दिया हुआ नाम खा लिया कुत्तों ने। अब यही नाम है जो तुम्हारे दफ़्तर का दिया हुआ है। मैं बारह सौ छब्बीस बटा सात हूँ। मेरा और कोई नाम पता नहीं है। मेरा नाम याद कर लो। अपनी डायरी में लिख लो। वाहगुरु का कुत्ता—बारह सौ छब्बीस बटा सात।"

"बाबा जी, आज जाओ, कल-परसों फिर आ जाना। तुम्हारी अर्ज़ी की कार्यवाही तकरीबन-तकरीबन पूरी हो चुकी है...।"

"तकरीबन-तकरीबन पूरी हो चुकी है और मैं आप तकरीबन-तकरीबन पूरा हो चुका हूँ। अब सिर्फ यह देखना है कि पहले वह पूरी होती है कि पहले मैं पूरा होता हूँ। एक तरफ़ सरकार का हुनर है और दूसरी तरफ़ परमात्मा का हुनर है। तुम्हारा तकरीबन-तकरीबन अभी दफ्तर में ही रहेगा और मेरा तकरीबन-तकरीबन कफ़न में पहुँच जायगा। सालों ने सारी पढ़ाई खर्च करके दो लफ़्ज़ ईजाद किये हैं—शायद और तकरीबन। शायद आपके काग़ज़ ऊपर चले गए हैं—तकरीबन-तकरीबन कार्यवाही पूरी हो गई है! शायद से निकालो तो तकरीबन में डाल दो और तकरीबन से निकालो तो शायद में ग़र्क कर दो। 'तकरीबन तीन चार महीने में तहकीकात होगी।'.....'शायद महीने दो महीने में रिपोर्ट आएगी।' मैं आज शायद और तकरीबन दोनों घर पर छोड़ आया हूँ। मैं यहाँ बैठा हूँ और यहीं बैठूँगा। मेरा काम होना है तो आज ही होगा और अभी होगा। तुम्हारे शायद और तकरीबन के गाहक ये सब खड़े हैं। यह ठगी इनसे करो...।"

बाबू लोग अपनी सद्भावना से निराश होकर एक-एक करके अन्दर लौटने लगे।

"बैठा है, बैठा रहने दो।"

"बकता है, बकने दो।"

"साला बदमाशी से काम निकालना चाहता है।"

"लेट हिम बार्क हिमसेल्फ़ टू डेथ।"

बाबुओं के साथ चपरासी भी बड़बड़ाता हुआ अपने स्टूल पर लौट गया, "मैं साले के दाँत तोड़ देता। अब बाबू लोग हाकिम हैं और हाकिमों का कहा मानना पड़ता है, वरना···"

"अरे बाबा, शान्ति से काम ले। यहाँ मिन्नत चलती है, पैसा चलता है, धौंस नहीं चलती," भीड़ में से कोई उसे समझाने लगा।

वह आदमी उठकर खड़ा हो गया।

"मगर परमात्मा का हुक्म हर जगह चलता है," वह कमीज़ उतारता हुआ बोला। "और परमात्मा के हुक्म से आज बेलाज बादशाह नंगा होकर कमिश्नर साहब के कमरे में जायगा। आज वह नंगी पीठ पर साहब के डण्डे खाएगा। आज वह बूटों की ठोकरें खाकर प्राण देगा। लेकिन वह किसी की मिन्नत नहीं करेगा, किसी को पैसा नहीं चढ़ाएगा, किसी की पूजा नहीं करेगा। जो वाहगुरु की पूजा करता है, वह और किसी की पूजा नहीं करता। तो वाहगुरु का नाम लेकर···।"

इससे पहले कि वह अपने कहे को किये में परिणत करता, दो-एक आदमियों ने बढ़कर उसके हाथ पकड़ लिये। बेलाज बादशाह हाथ छुड़ाने के लिए संघर्ष करने लगा।

"मुझे जाकर इनसे पूछने दो कि क्या इसीलिए महात्मा गाँधी ने इन्हें आज़ादी दिलाई थी कि ये आज़ादी के साथ इस तरह सम्भोग करें? उसकी मिट्टी खराब करें? उसके नाम पर कलंक लगायें? उसे टके-टके की फ़ाइलों में बाँधकर ज़लील करें? लोगों के दिलों में उसके लिए

नफ़रत पैदा करें ? इन्सान के तन पर कपड़े देखकर इन लोगों की बात समझ में नहीं आती। शरम उसे होती है जो इन्सान हो। मैं तो आप कहता हूँ कि मैं इन्सान नहीं, कुत्ता हूँ…।"

सहसा भीड़ में एक दहशत-सी फैल गई। कमिश्नर साहब अपने कमरे से बाहर निकल आये थे। वे माथे की तेवड़ियों और चेहरे की झुर्रियों को गहरा किये हुए भीड़ के पास आ गए।

"क्या बात है ? क्या चाहते हो तुम ?"

"आपसे मिलना चाहता हूँ साहब," वह व्यक्ति साहब को घूरता हुआ बोला। "सौ मरले का एक गड्ढा मेरे नाम एलाट हुआ है। वह गड्ढा वापस करना चाहता हूँ, ताकि सरकार उसमें एक तालाब बनवा दे, और अफ़सर लोग शाम को वहाँ बैठकर मछलियाँ मारा करें। या उस गड्ढे को सरकार एक तहख़ाना बना दे और मेरे जैसे कुत्तों को वहाँ बन्द कर दे…।"

"ज़्यादा बातें मत करो। अपना केस लेकर मेरे पास आओ।"

"मेरा केस मेरे पास नहीं है साहब ! दो साल से सरकार के पास है, आपके पास है। मेरे पास अपना शरीर और दो कपड़े हैं। चार दिन बाद ये भी नहीं रहेंगे, इसलिए इन्हें आज ही उतार देता हूँ। बाकी सिर्फ़ बारह सौ छब्बीस बटा सात रह जायगा। बारह सौ छब्बीस बटा सात परमात्मा के हुज़ूर में भेज दिया जायगा…।"

"बातें बन्द करो और मेरे साथ आओ।"

कमिश्नर साहब अपने कमरे की तरफ़ चल दिए। वह आदमी भी कमीज़ कन्धे पर रखे हुए उनके साथ-साथ चलने लगा।

"दो साल चक्कर लगाता रहा, किसीने नहीं सुना। खुशामदें करता रहा, किसी ने नहीं सुना। वास्ते देता रहा, किसीने नहीं सुना…।"

चपरासी ने चिक उठा दी और वह कमिश्नर साहब के साथ अन्दर चला गया। घण्टी बजी, फ़ाइलें हिलीं, बाबुओं की बुलाहट हुई और

आध घण्टे बाद बेलाज बादशाह मुस्कराता हुआ बाहर निकल आया। उत्सुक आँखों की भीड़ ने उसे देखा तो वह फिर बोलने लगा, "चूहों की तरह बिटर-बिटर देखने से कुछ नहीं होता। भौंको, भौंको, सबके सब भौंको। अपने-आप सालों के कानों के परदे फट जायँगे। भौंको कुत्तो, भौंको...।"

उसकी भावज दोनों बच्चों के साथ गेट के पास खड़ी प्रतीक्षा कर रही थी। वह दोनों बच्चों के कन्धों पर हाथ रखे हुए सचमुच बादशाह की तरह सड़क पर चलने लगा।

"हयादार हो तो सालो मुँह लटकाये खड़े रहो। अर्ज़ियाँ टाइप कराओ और नल का पानी पियो। सरकार वक्त ले रही है। और नहीं तो बेहया बनो। बेहयाई हज़ार बरकत है।"

वह सहसा रुका और ज़ोर से हँसा।

"यारो, बेहयाई हज़ार बरकत है।"

उसके चले जाने के बाद कम्पाउंड में और उसके आस-पास मातमी वातावरण और गहरा हो गया। भीड़ धीरे-धीरे बिखरकर अपनी जगहों पर चली गई। चपरासी की टाँगें फिर स्टूल पर उठ गईं। सामने कैंटीन का लड़का बाबुओं के कमरे में एक सेट चाय ले गया। अर्ज़ी-नवीस की मशीन चलने लगी और टिक-टिक की आवाज़ के साथ उसका लड़का फिर अपना सबक़ दोहराने लगा, "पी ई एन पेन, पेन माने कलम, एच ई एन हेन, हेन माने मुर्गी, डी ई एन डेन, डेन माने अंधेरी गुफा...।

आख़िरी सामान

सम्भ्रान्त अतिथि का हिलता हुआ निचला ओंठ और छलकी हुई कॉफ़ी की प्याली···निस्तब्ध रात और अपनी-अपनी जगह पर जकड़ी हुई चीज़ें···

मिसेज़ भण्डारी—बेला भण्डारी—का चेहरा तिपाई पर झुका हुआ था। सामने वह सफ़ेद जिल्द का एलबम था, जो अब काफ़ी पुराना पड़ गया था। जिल्द पर जगह-जगह हाथों के मैल से दाग़ पड़ गए थे, एकाध दाग़ शायद चाय-कॉफ़ी का भी था। न जाने कितने बरस पहले, वह एलबम खरीदा गया था। उनके ब्याह से पहले वह मिस्टर भण्डारी के पास था। उनका ब्याह उस एलबम की ज़िन्दगी के मध्य-काल में हुआ था। तब मिस्टर भण्डारी एक्साइज़ और टैक्सेशन के महकमे में अफ़सर नियुक्त हो चुके थे।

मिसेज़ भण्डारी एलबम के वे पन्ने पलट चुकी थीं, जिन पर मिस्टर भण्डारी की कॉलेज के आरम्भिक दिनों की तस्वीरें थीं। उन दिनों उनका जिस्म कितना अच्छा था! अब सामने वह तस्वीर थी, जो मिस्टर भण्डारी के स्टूडेण्ट्स कांग्रेस के प्रधान चुने जाने के अवसर पर खींची गई थी। तस्वीर में वे माइक्रोफ़ोन पर भाषण दे रहे थे। उन दिनों उनके चेहरे पर बहुत हल्की-हल्की मूँछें थीं, आँखों में एक ख़ास तरह की चमक थी। फिर भी वे कितने मासूम लगते थे!

मिसेज़ भण्डारी ने बालों को हल्का-सा झटका दिया। शायद कोई कीड़ा बालों में उलझ गया था। अपने कटे हुए रेशमी बालों का गरदन पर फिसलना उन्हें सदा रोमाञ्चित कर देता था। उन्हें लगता जैसे किसी ख़रगोश के जिस्म से गरदन सहला रही हों। अपने बालों के वज़न पर भी उन्हें गर्व होता था। गरदन झटकने पर भी बालों में उलझी हुई

चीज़ नहीं निकली, तो वे उँगलियों से टटोलने लगीं। टटोलने पर कुछ नहीं मिला, फिर भी यह आभास बना रहा कि बालों में कुछ अटका हुआ है। उन्होंने एलबम पर कुहनी रखे हुए, धीरे-धीरे आँखें मूँद लीं। फिर सहसा आँखें खोलकर उन्होंने आवाज़ दी, "चपरासी !"

आवाज़ खाली कमरे में गूँज गई। तीखी होते हुए भी वह आवाज़ ख़ाली-सी थी—जैसे वह आवाज़ न हो, सिर्फ़ एक गूँज हो।

"हज़ूर !" चपड़ासी मनोहर दरवाजे के पास आ खड़ा हुआ। इतना धीमे यह पहले कभी नहीं बोलता था। उसका यह स्वर उसकी अकड़ी हुई मूँछों, तुर्रेदार पगड़ी और चमकती हुई बेल्ट के साथ मेल नहीं खाता था। उसकी बढ़ी हुई शिष्टता का जैसे अर्थ था कि वह आज चपरासी नहीं कुछ और है, और उसका अदब अदब नहीं, दया और हमदर्दी है।

"मुन्ना को थोड़ी देर के लिए नीचे ले जाओ, यहाँ गरमी है।"

आदेश पाकर भी कुछ क्षण मनोहर के पाँव नहीं हिले। वह स्थिर दृष्टि से उन्हें देखता रहा—जैसे नौकर-मालिक के रिश्ते की दहलीज़ लाँघकर एक क़दम आगे आना चाहता हो, मगर संस्कारों की जकड़ बढ़ने न देती हो।

"हज़ूर !" आखिर उसने कहा। मिसेज़ भण्डारी की झुकती हुई आँखें फिर उठ गईं।

"हज़ूर, आप भी थोड़ी देर के लिए नीचे चल बैठिए। यहाँ तो आज दम घुट रहा है। अहाते में ज़रा-ज़रा हवा है····।"

"नहीं, मैं अभी यहीं हूँ, तुम मुन्ना को ले जाओ।" फिर आवाज़ नहीं, गूँज, खोखली गूँज····। मिसेज़ भण्डारी ने फिर बालों को झटक लिया।

चपरासी मनोहर का मुँह कुछ कहने के लिए खुला, लेकिन फिर जैसे उसके संस्कार लकवा मार गए।

"बहुत अच्छा हज़ूर," कहकर वह वहाँ से हट गया।

मिसेज़ भण्डारी ने रूमाल से माथे का पसीना पोंछा और कुछ क्षण

जैसे सब कुछ भूली-सी बैठी रहीं। सामने दीवार की अलमारी के शीशे में उनके चेहरे का प्रतिबिम्ब दिखाई दे रहा था। उनका चेहरा कितना बदल गया था! नाक के दोनों ओर गालों की रेखाएँ गहरी हो गई थीं! एक उँगली से उन रेखाओं को उन्होंने मल लिया। छः महीने में ही उन पर बुढ़ापा आने लगा? बालों पर हाथ फेरकर उन्होंने मन की शंका को ग़लत प्रमाणित करने का प्रयत्न किया। लेकिन वे चेहरे की लकीरें....!

रूमाल से गले का पसीना पोंछकर वे फिर तिपाई पर झुक गईं। सिर में बहुत भारीपन महसूस हो रहा था। दिमाग़ जैसे एक साथ बहुत-सी बातें सोच रहा था! या जैसे कुछ भी नहीं सोच रहा था! सोचने के लिए कोई सूत्र नहीं था, कई विचार थे। या विचारों के टुकड़े थे। जैसे बहुत से विचारों के खण्डित टुकड़े दिमाग़ की सतह पर मँडरा रहे थे। और एक कील-सी थी, जो दिमाग़ में गड़ रही थी—पन्द्रह रुपये! पन्द्रह रुपये एक....पन्द्रह रुपये दो....पन्द्रह रुपये दो....पन्द्रह रुपये आठ आने! पन्द्रह रुपये आठ आने! आठ आने एक....आठ आने दो....!

उनकी आँखें फिर ज़रा-सी उठ गईं। गालों की लकीरें सचमुच बहुत गहरी हो गई थीं। इतनी जल्दी ये लकीरें इतनी गहरी कैसे हो गईं? कुछ ही महीने पहले चेहरे का माँस बिलकुल हमवार और चिकना था। अब उस चिकनाहट की जगह ये हल्की-हल्की नामालूम सलवटें...! उन्होंने फिर चेहरे पर हाथ फेरा और आँखें नीचे झुका लीं।

मिस्टर भण्डारी को उनके रूप का कितना मोह था! उनके मित्रों ने विवाह के समय उनके चुनाव की कितनी प्रशंसा की थी! सभाओं, पार्टियों में लोग मिस्टर भण्डारी के एस्थेटिक टेस्ट की कितनी प्रशंसा करते रहे हैं! बेला भण्डारी का सौन्दर्य....बेला भण्डारी का वस्त्रों का चुनाव...बेला भण्डारी का मुस्कराने का अंदाज़.... इस सबमें मिस्टर भण्डारी की देन कितनी महत्त्वपूर्ण रही है!

उन्होंने एलबम का पन्ना पलट दिया। वाई० एम० सी० ए० के हाल में खेले गए नाटक 'शी स्टूप्स टु कांकर' के पात्र तथा नाटक के

निर्देशक सुशील भण्डारी। चेहरा ठीक फ़ोकस में नहीं था। वैसे भी उस तस्वीर में दुबले लगते थे। उन दिनों उनके निर्देशन की बहुत प्रशंसा हुई थी। एक अखबार ने सुशील भण्डारी को नाटक का वास्तविक हीरो कहा था। दूसरे ने भविष्यवाणी की थी कि इस कला के क्षेत्र में उनका नाम बहुत जल्दी चमक उठेगा। शहर के शिक्षित वर्ग में प्रायः सभी लोग उन्हें जान गए थे। साहित्यिक और सांस्कृतिक मजलिसों में प्रायः उन्हें निमन्त्रित किया जाता था। उनकी योग्यता और प्रतिभा की हर कहीं दाद दी जाती थी। यूनिवर्सिटी से निकलने से पहले ही समाज में उनका स्थान बन गया था। लोग बातें करते थे कि राजनीति तथा साहित्य और संस्कृति के क्षेत्र में सुशील भण्डारी का अच्छा नाम होगा। उनके पास सभा कुछ तो था—व्यक्तित्व, विचार, भाषा...।

मस्तिष्क में कील और गहरी गड़ रही थी—सत्रह रुपये एक! सत्रह रुपये दो! सत्रह रुपये दो....दो...तीन!

शायद डाइनिंग टेबल की बोली हो रही थी। वे खिड़की के पास जाकर देखना नहीं चाहती थीं। कुछ देर पहले तक वे उस व्यापार को देख रही थीं। कोठी का सारा सामान अहाते में बिखरा था—दो टूटी कुरसियों, एक तिपाई, दो-एक चारपाइयों और कुछ ट्रंकों को छोड़कर बाकी सब-कुछ नीलाम हो रहा था—सोफ़ा सेट, रेडियोग्राम, रेफ्रिजरेटर, छोटी-बड़ी अलमारियाँ, कुरसियाँ, डाइनिंग टेबल, कालीन, परदे, बुक शेल्फ़, ऑयल पेंटिंग्ज़, पत्थर और प्लास्टर ऑव पैरिस की मूर्तियाँ, फूलदान, फ़ोटो फ्रेम, ऐश ट्रे और अनगिनत छोटी-मोटी चीज़ें, जो न जाने कितने बरसों में इकट्ठी हुई थीं।

आगे पाँच-छः चित्र उनके विवाह के अवसर के थे। विवाह-मंडप पर लिया गया चित्र, चाय पार्टी का चित्र, उन दोनों का बस्ट। बस्ट बहुत खूब-सूरत आया था। फिर नाव में बैठकर उतरवाये हुए दो चित्र थे। हनी-मून के दिनों में उनके दिल में कितना उल्लास था! दोनों बच्चों की तरह नदी से पानी उछाला करते थे। मिस्टर भण्डारी ने एक बार कन्धे से

पकड़कर उन्हें कई गोते दे दिये थे। वे मिस्टर भण्डारी के शरीर से चिपट गई थीं। ठण्डे पानी में भी उस स्पर्श से शरीर रोमांचित हो उठा था।

अगले चित्र में मिस्टर भण्डारी और सुधीर साथ-साथ मुस्कराते हुए खड़े थे।

मिस्टर भण्डारी के माथे पर हल्की-सी शिकन थी। सुधीर की उपस्थिति में उनके माथे पर प्राय: यह शिकन पड़ जाती थी। उस शिकन को वही देख पाती थीं, और उसका अर्थ भी वही जानती थीं। सुधीर उनका कॉलेज के दिनों का दोस्त था, पर उसके पिता मिनिस्ट्री से सम्बद्ध थे, इसलिए वह बहुत शीघ्र उन्नति कर गया था। उसे कई तरह के सरकारी ठेके मिल जाते थे। तीन-चार साल में ही उसने दो-ढाई लाख की जायदाद बना ली थी। मिस्टर भण्डारी को एक्साइज़ और टैक्सेशन के महकमे में जगह भी सुधीर के रसूख से ही मिली थी। यूँ दोनों की खासी दोस्ती थी, और रोज़ का साथ का उठना-बैठना था, परन्तु सुधीर के साथ अपने सम्बन्ध को लेकर मिस्टर भण्डारी के मन में एक छाया घिरी रहती थी, क्योंकि शायद वे दोस्त होकर भी बराबर नहीं थे, बड़े-छोटे थे। मिस्टर भण्डारी, जिन्हें अपनी योग्यता और प्रतिभा के नाते बड़ा होना चाहिए था, छोटे थे, और सुधीर जिसे छोटा होना चाहिए था, बड़ा था। मिस्टर भण्डारी सुधीर की उपस्थिति में अपनी हद से बाहर ख़र्च करते थे। अपने घर को सजाने की भी उन्हें बहुत चाह थी। वे प्राय: कहा करते थे कि सुधीर के पास पैसा है, पर अच्छी चीज़ पहचानने वाली आँख नहीं है। गाँठ है, टेस्ट नहीं। यदि वे उससे एक-चौथाई भी खर्च कर सकें, तो अपने घर को इस तरह सजाकर रखें कि देखने वाले की आँखें पथरा जायँ। जहाँ तक बन पड़ता, वे घर के लिए नित नई चीज़ें ले आया करते थे। मगर सुधीर के घर जैसे पर्दों और गलीचों के लिए ही हज़ारों रुपये चाहिएँ थे। जब कभी वे लोग सुधीर के यहाँ जाते तो सारा समय मिस्टर भण्डारी के माथे पर वह नामालूम शिकन बनी

रहती। घर लौटकर वे उनके रूप की बहुत प्रशंसा करते थे और गर्मजोशी के साथ उन्हें चूम लिया करते थे। इस एक बात में वे सुधीर को अपने से हीन समझ सकते थे। सुधीर की पत्नी मीरा ज़्यादा सुन्दर नहीं थी। मीरा का कद छोटा था, और शरीर कुछ ज़्यादा मांसल था और····और शायद इसीलिए, सुधीर जब-जब उनकी ओर देखता था, उसकी आँखों में कुछ और भी हल्का-सा आभास होता था—इतना अस्पष्ट कि कई बार उन्हें लगता कि शायद उनकी ग़लतफ़हमी ही है।

"दो सौ पन्द्रह !····पन्द्रह··· बीस ! दो सौ बीस एक····दो सौ बीस दो···।"

सम्भवत: अब रेफ्रिजरेटर की बोली हो रही थी। फिर भी मिसेज़ भण्डारी का उठकर देखने को मन नहीं हुआ। आखिर एक-एक करके हर चीज़ की बोली हो जायगी। देखने-न-देखने से अन्तर क्या पड़ता है? उनका दिल अन्दर-ही-अन्दर बैठ रहा था। मिस्टर भण्डारी ने एक-एक चीज़ के चुनाव पर कितना समय खर्च किया था! डाइनिंग टेबल के लिए चाकलेट रंग का शेड चुनने में ही उन्हें कई दिन लग गए थे। उसकी शेप उन्होंने एक पादरी के घर देखे हुए डाइनिंग टेबल के अनुसार बनवाई थी। सोफ़ा सेट के लिए कवर का कपड़ा वे कलकत्ता से लाये थे। और जिस दिन रेफ्रिजरेटर आया, उस दिन उन्होंने कमरे की कलर स्कीम बदल दी थी। पुराने पर्दों की जगह नये परदे लगाये थे। नौकर और चपरासी को पाँच-पाँच रुपये इनाम दिया था।

उसके बाद नया-नया सामान उनके घर अक्सर आने लगा था। आज कालीन तो कल अलमारियाँ। घर में जितना सामान आ सकता था, उससे कहीं अधिक सामान ले आया गया था। मिस्टर भण्डारी की ज़ेब में भी काफ़ी पैसा रहता था। यह जानना शेष नहीं था, कि वह पैसा कहाँ से आता है।

पहले उनका दिल डरा करता था। मिस्टर भण्डारी से वे कुछ नहीं कहती थीं, परन्तु घर में आती हुई नई-नई चीज़ों को देखकर उनका

मन आशंकित रहता था। फिर धीरे-धीरे मन अभ्यस्त हो गया। पहले वे सब चीज़ें पराई-सी लगती थीं। धीरे-धीरे अपनी लगने लगीं। मिस्टर भण्डारी सब-इंस्पेक्टरों के ज़रिये काम करते थे। सब-इन्स्पेक्टर तिहाई के साझीदार होते थे। आज एक कम्पनी का बिक्री टैक्स आधा करके तीन हज़ार वसूल किये जाते, तो वीस दिन बाद छापे में अफ़ीम बरामद करके पाँच सौ-हज़ार में छोड़ दी जाती। उनका ड्राइंग रूम अब अफ़सर तबके में सबसे ज्यादा सजे हुए ड्राइंग रूम्ज़ में गिना जाता था। लोगों में कानाफूसियाँ होती थीं। मगर मिस्टर भण्डारी परवाह नहीं करते थे। पैसा बाहर से आता था, और बाहर ही ख़र्च कर दिया जाता था। पहले दिनों में मिस्टर भण्डारी नौकरी छोड़कर, सारा समय राजनीतिक कार्य में लगा देने की बात किया करते थे। कॉलेज के दिनों के आदर्श गाहे-बगाहे उन्हें कुरेदने लगते थे। मगर धीरे-धीरे उनकी फ़िलाॅसफ़ी बदल गई थी। अब वे कहते थे कि इन्सान नीचे से दुनिया के लिए कुछ नहीं कर सकता, कुछ करने के लिए आवश्यक है कि इन्सान पहले कुछ करने की स्थिति पर पहुँच जाय। किस रास्ते से वह वहाँ पहुँचता है, इसका महत्व नहीं है। नीचे की सतह से आदर्श की कोई आवाज़ नहीं है। आदर्श की आवाज़ ऊपर की सतह से ही सुनाई जा सकती है। मगर ज्यों-ज्यों वे ऊपर उठ रहे थे, सतह और ऊँची उठती जाती थी।

मिस्टर भण्डारी अब रात को देर से क्लब से लौटते थे। पहले पार्टियों में केवल साथ देने के लिए सिप कर लिया करते थे, अब बाक़ायदा पीने लगे थे। घर में रेफ्रिजरेटर का इस्तेमाल बोतलें रखने के लिए होने लगा था। एक बार उन्होंने उन्हें भी मजबूर करके पिलाई थी। उन्हें हर चीज़ घूमती नज़र आने लगी थी। दीवारें जैसे फ़र्श के इर्द-गिर्द चक्कर लगा रही थीं, और फ़र्श ऊपर को उठ रहा था। पैर हल्के लगते थे और कदम ठीक नहीं पड़ते थे। मिस्टर भण्डारी के दोस्तों ने उनका अच्छा मज़ाक बनाया था। उन्हें बाहर टहलाने के लिए ले गए थे। फ़ुटपाथ के खम्भे उन्हें अपने पर गिरने को आते-से प्रतीत होते

थे। वे मिस्टर भण्डारी की बाँह का सहारा लेकर चलती रहीं, और वे लोग फ़ब्तियाँ कसते रहे। मिस्टर भण्डारी कई बार क्लब से आधी रात के क़रीब लौटकर आते। गेट का दरवाज़ा खुलता और बन्द होता। फिर नौकर का दरवाज़ा खटखटाया जाता। ऐसे अवसरों पर वे उनके सामने आने से बचा करते थे। नौकरों और पड़ौसियों में चर्चा होती थी। वे नहीं जानती थीं कि जो कहा जाता है, कहाँ तक सच है। पर कई बार उन्हें स्वयं सन्देह होता था। मिस्टर भण्डारी के कपड़े उठाते रखते उन्हें महसूस होता था कि उनमें किसी पराये शरीर की गन्ध समाई है। और वह गन्ध सदा एक-सी नहीं होती थी। मगर जैसे खामोश समझौता हो, वे इस बारे में कभी कुछ नहीं पूछतीं थीं, न ही वे कभी कुछ कहते थे। हाँ अक्सर चिड़चिड़ाये रहते थे। छोटी-छोटी बात पर गुस्सा करते थे। खाने में ज़्यादा नुक्स निकालते थे।···मगर समाज में उनकी प्रतिष्ठा बढ़ रही थी। अब कहीं ज़्यादा पार्टियों पर उन्हें बुलावा आता था सरकारी उत्सवों में उन्हें मान के साथ आगे बैठाया जाता था। लोग उनकी साड़ियों और मिस्टर भण्डारी की टाइयों की बहुत प्रशंसा करते थे।

मिसेज़ भण्डारी ने एल्बम के कई पन्ने अनदेखे ही पलट दिये थे। जो पन्ना सामने था, उस पर एक सम्भ्रान्त अतिथि की तस्वीर थी, चाय की प्याली हाथ में लिये हुए। सफ़ेद टोपी, गोल चेहरा, गोल काया, काली अचकन। चेहरा तस्वीर से उभरकर आगे को आया-सा लगता था। नीचे का ओंठ चेहरे के अनुपात में अधिक मोटा, और जग की चोंच की तरह आगे को निकला हुआ। गरदन कंधों में धँसी-सी थी। सारे शरीर में एक चीज़ तीखी थी—आँखें। अगले पन्ने पर सम्भ्रान्त अतिथि के साथ मिस्टर भण्डारी और उनकी तस्वीर थी। मिस्टर भण्डारी का चेहरा पहले से बहुत भर गया था, पर उनके मुकाबले में वे बहुत हल्के और छोटे लगते थे। उन दोनों के बीच वे तो खो ही गई थीं। उनके चेहरे की मुस्कराहट ही उनके व्यक्तित्व को सँभाले थी···।

सम्भ्रान्त अतिथि प्रदेश के एक उच्च अधिकारी थे। उन्हें उस दिन विशेष रूप से खाने पर बुलाया था। एक चाय-पार्टी पर उन लोगों का उनसे परिचय हुआ था, और उसी दिन उनका खाने पर आना तय हो गया था। लोगों को मिस्टर भण्डारी की इस मिलनसारी से ईर्ष्या हुई थी।

खाने से पहले दो घण्टे तक उन लोगों का दौर चलता रहा। मिस्टर भण्डारी की नाक के अगले भाग में रह-रहकर हल्का-सा कम्पन होता था। इसका भी अर्थ वे अच्छी तरह जानती थीं। मिस्टर भण्डारी की आँख बारह सौ रुपये की एक नौकरी पर थी जो सम्भ्रान्त अतिथि के रसूख़ से प्राप्त हो सकती थी। मिस्टर भण्डारी सम्भ्रान्त अतिथि की हर बात का अनुमोदन कर रहे थे। सम्भ्रान्त अतिथि भी उनकी हर बात से सहमति प्रकट कर रहे थे। खाना खाते हुए सम्भ्रान्त अतिथि का निचला ओंठ एक खास अन्दाज़ में हिलता था। उस ओंठ के फैलाव से कितनी अतृप्ति झलकती थी!

तभी नौकर ने सूचना दी थी कि उनका एक सब-इंस्पेक्टर बाहर आया है। मिस्टर भण्डारी खाना बीच में ही छोड़कर बाहर चले गए थे। दो मिनिट बाद लौटकर उन्होंने कहा कि उन्हें बहुत-सी चरस पकड़ने के लिए तुरन्त ही रेड पर जाना पड़ेगा। सम्भ्रान्त अतिथि से क्षमा-याचना करते हुए, उनसे उन्हें ठीक से कॉफ़ी पिलाने तथा एंटर्टेन करने के लिए कहकर, वे सब-इंस्पेक्टर के साथ चले गए। उनके चले जाने के बाद सम्भ्रान्त अतिथि की तीखी आँखें और तीखी हो गईं। वे आँखें उनके शरीर के हर भाग को जैसे उघाड़कर देख रही थीं। उन्होंने अपनी साड़ी को अच्छी तरह लपेट लिया। सम्भ्रान्त अतिथि की आँखों में ख़ास तरह के डोरे दिखाई देने लगे। जब उन्होंने कॉफ़ी की प्याली बनाकर उनकी ओर बढ़ाई, तो सम्भ्रान्त अतिथि ने बरबस उनका हाथ पकड़कर, उन्हें अपनी तरफ़ खींचा। प्याली छलक जाने से बहुत-सी कॉफ़ी सम्भ्रान्त अतिथि के कपड़ों पर गिर गई। बहुत

खींचतान करके किसी तरह वे अपने को छुड़ा पाईं। नौकर को उन्हें कॉफ़ी पिलाकर विदा कर देने के लिए कहकर, वे सोने के कमरे में चली गईं, और अन्दर से चिटख़नी लगाकर देर तक रोती रहीं। मिस्टर भण्डारी जा रहे थे तो उन्हें आश्चर्य हुआ था कि क्या रेड पर जाना उनके लिए उस अतिथि के पास बैठने से अधिक आवश्यक है? मगर अब कुछ भी अस्पष्ट नहीं था। उधर मोटे स्वर में नौकर को डाँट दी जा रही थी। यूँ, वातावरण निःस्तब्ध था। हर चीज़ जैसे अपनी जगह पर जकड़ गई थी।

उस दिन से मिस्टर भण्डारी उन पर और खीझने लगे। वे कई बार रात को घर आते ही नहीं। सुबह नाश्ते के समय भी उनमें बातचीत नहीं होती। किसी चाय-पार्टी पर उन्हें साथ जाना पड़ता, तो भी सारा समय वह खिचाव बना रहता। मिस्टर भण्डारी का बारह सौ की नौकरी पाने का मनसूबा पूरा नहीं हुआ था। वे सोचतीं कि क्या इसकी वजह वही हैं।

उन्हीं दिनों एक बहुत बड़ा केस मिस्टर भण्डारी के हाथ में आया। उस केस में उन्हें एक अच्छी फ़ोर-सीटर गाड़ी हासिल हो सकती थी। दोनों सब-इंस्पेक्टर रात को देर-देर तक उनके पास बैठे रहते। दिन में भी कई-कई बार मशविरे होते। दफ़्तर से फ़ाइलें घर लाई जातीं, और घण्टों कागज़ पलटे जाते। आखिर योजना तैयार हो गई।

उस दिन सवेरे से ही मिस्टर भण्डारी उत्तेजित थे। उनके चेहरे पर लाली छाई थी। हर काम उतावली में कर रहे थे। टाई की नॉट भी ठीक से नहीं बाँध पाये। चाय पीते हुए, दो बार प्याली छलक गई। डाइनिंग टेबल पर उड़ती हुई मक्खी से वे नाहक परेशान हो उठे। दफ़्तर जाते हुए उन्होंने अपने नाखूनों को देखा कि ज़रूरत से ज़्यादा बढ़े हुए हैं। जाते-जाते कुछ कहने के लिए रुके, मगर बिना कहे ही चले गए। शाम को समाचार आया कि वे गिरफ़्तार हो गए हैं।...वे जिस कुरसी पर बैठी थीं, उसमें जैसे धँसती चली गईं। चपरासी मनोहर से

उन्हें विस्तारपूर्वक सारी बात का पता चला। उनके सब-इंस्पेक्टरों ने पुलिस से मिलकर उन्हें फँसा दिया था। मिस्टर भण्डारी ने जो योजना बनाई थी, उसे खण्डित करने की योजना उससे पहले तैयार हो चुकी थी। मिस्टर भण्डारी ने रुपया सोने की शक्ल में लिया था। मगर वह पुलिस द्वारा वज़न किया हुआ और निशान लगाया हुआ सोना था। मिस्टर भण्डारी वहीं पकड़ लिये गए और वहीं पर रिश्वत देने वाली पार्टी और दोनों सब-इंस्पेक्टरों के उनके ख़िलाफ़ बयान भी हो गए। तुरन्त ही उनके नौकरी से बरख़ास्त किये जाने के आर्डर प्राप्त कर लिये गए और उन्हें हथकड़ी पहना दी गई। दूसरे दिन वे सुधीर से मिलने गईं कि उनकी ज़मानत हो जाय। मगर सुधीर उन दिनों वहाँ नहीं था।

चपरासी मनोहर कभी-कभार उनके यहाँ चक्कर लगा जाता था। दफ़्तरी हल्के का और कोई व्यक्ति उनसे मिलने नहीं आता था। मनोहर ने ही एक दिन उन्हें बताया था कि मिस्टर भण्डारी को फँसाने की योजना का सूत्र कहीं और से आया था। सम्भ्रान्त अतिथि का हिलता हुआ निचला ओंठ, और छलकी हुई कॉफ़ी की प्याली !···निःस्तब्ध रात और अपनी-अपनी जगह पर जकड़ी हुई चीजें !····उनका पूरा अस्तित्व ही जैसे जकड़कर रह गया था। ज़िन्दगी के इस मोड़ का मूल-यन्त्र भी क्या वही थीं ?

बालों को हाथ से टटोलते हुए मिसेज़ भण्डारी ने उनमें उलझी हुई चीज़ निकाल ली—नाख़ून के आकार का पतला-तीखा-सा एक तिनका था। न जाने बालों में कहाँ से उलझ गया था ! उन्होंने उसे मसलकर फेंक दिया। मगर वैसा ही एक तिनका कहीं उनके अन्तर में भी अटका हुआ था। उसकी गड़न महसूस करते हुए भी उसे टटोला नहीं जा सकता था। मिस्टर भण्डारी को सज़ा हो गई थी। जेल में वे बहुत दुबले हो गए थे; और वे स्वयं ? उनके चेहरे की वह चमक कहाँ है, जिस पर उन्हें नाज़ था ? तिनका बहुत तीखा गड़ रहा था। लेकिन कहाँ······?

एक ठण्डी साँस लेकर वे कुरसी से उठ गईं और खिड़की के पास चली गईं। सामान की बोली बदस्तूर चल रही थी। तीन-चौथाई से ज़्यादा सामान नीलाम हो चुका था। अब चार-छः आइटम ही बाक़ी थे: टाइप राइटर, प्लास्टर ऑव पेरिस की दो मूर्तियाँ, दो ऑएल पेंटिंग्ज़।

अहाते में धूल उड़ रही थी। किसी ज़माने में अहाते को लॉन में बदलने का प्रयत्न किया गया था। जहाँ-तहाँ घास की तिगलियाँ अब भी बाक़ी थीं, यद्यपि ज़्यादा भाग ख़ाकी ही था। हवा के हर झोंके के साथ बहुत-सी गर्द उड़ती थी, और बिखरे हुए सामान पर फैल जाती थी। सामान की आख़िरी बोलियाँ हो रही थीं—बारह रुपये! बारह रुपये चार आने! बारह रुपये छः आने! छः आने···आठ आने! बारह रुपये आठ आने!

मिसेज़ भण्डारी लौटकर कुरसी के पास आ गईं। सामने खुले हुए अलबम का ख़ाली पन्ना था। काला चौकोर पन्ना! वे बैठ गईं। उस पन्ने पर न जाने कब कौनसी तस्वीर लगेगी? उनके सारे प्रयत्न मिस्टर भण्डारी को रिहा और नौकरी पर बहाल करा पाएँगे या नहीं? सामान की नीलामी से ढाई-तीन हज़ार रुपये से ज़्यादा नहीं मिलेंगे। उससे क्या पूरे क़र्ज़ चुकाये जा सकेंगे? उसके बाद अपील के लिए पैसे की ज़रूरत पड़ेगी। घर के रोज़मर्रा ख़र्च के लिए पैसे की ज़रूरत होगी।···नीचे अहाते में चपरासी मनोहर किसी से बात कर रहा था। शायद सुधीर से। सुधीर ही की आवाज़ थी। यह जानते हुए भी कि आज उनके सामान का नीलाम होगा, वह पहले नहीं आया। अब आया था, जब···। पहले उन्होंने सुधीर से कितनी आशा की थी! मगर सुधीर की आँखें अब और हो गई थीं। उसकी आँखों में जो हल्का-हल्का आभास होता था, वह कहीं गहरा हो गया था। वे देर तक उसकी एकटक दृष्टि का सामना नहीं कर पाती थीं। लेकिन····सुधीर के अतिरिक्त था कौन जिससे सहायता की आशा की जा सकती?

"नीचे बुला रहे हैं।" मिसेज़ भण्डारी सहसा चौंक गईं। चपरासी

मनोहर दरवाजे के पास खड़ा था। उसकी आँखों में गहरा अवसाद भरा था। वह अब भी जैसे कुछ कहना चाहता था, जो उसके ओंठों तक नहीं आता था। नीचे खामोशी छाई थी। शायद सारे सामान की बोली हो चुकी थी। वे क्षण-भर काले-चौकोर पन्ने पर नज़र गड़ाये रहीं, जैसे उस पर भी उन्हें कोई तस्वीर दिखाई दे रही हो; फिर अलबम बन्द करके नीचे जाने के लिए उठ खड़ी हुईं। सीढ़ियाँ उतरते हुए उन्हें ऐसे लगा, जैसे वे आप नहीं उतर रहीं, घर का आखिरी सामान नीचे पहुँचाया जा रहा है।

क्लेम

नाम	साधु सिंह
वल्द	मिलखा सिंह
कौम	खत्री
ज़मीन-जायदाद	कोई नहीं
रुपया-पैसा	कोई नहीं

क्लेम..................?

अड्डे से ताँगा चला तो उसमें कुल तीन ही सवारियाँ थीं। यदि दूर से बस आती दिखाई न दे जाती तो साधुसिंह अभी और कुछ देर चौथी सवारी की इन्तज़ार करता। परन्तु बस के आते ही ताँगे में बैठी हुई सवारियाँ उतरकर बस में चली जाती थीं, इसलिए बस के अड्डे पर पहुँचने से पहले ताँगा निकाल लेना आवश्यक हो जाता था। बस के आने से पहले सवारियाँ कितनी ही उतावली मचाती रहें, वह चार सवारियाँ पूरी किये बिना अड्डे से बाहर नहीं निकलता था। बस कचहरी से मॉडल टाउन के पाँच पैसे लेती थी, इसलिए ताँगे भी पाँच-पाँच पैसे सवारी लेकर ही जाते थे। यदि पूरी चार सवारियाँ हों तो कहीं पाँच आने पैसे बन पाते थे। नहीं तो घोड़े को सवा मील दौड़ाकर भी दस या पन्द्रह पैसे ही हाथ लगते थे। आज सुबह से उसने मॉडल टाउन के तीन फेरे लगाए थे, मगर अभी तक उसकी जेब में सत्रह आने भी जमा नहीं हो पाए थे। जून की चिलचिलाती धूप में घोड़े का वैसा ही दम निकलने को हो रहा था, फिर उसे दस-दस पैसे के लिए दौड़ाते फिरना अक्लमन्दी नहीं थी। मगर इसके सिवा चारा नहीं था। गरमी में सवारी निकलती ही कम थी, फिर मुकाबिला बस-सर्विस के साथ था जो कचहरी से मॉडल टाउन पहुँचने में पाँच मिनट लेती थी।

"चल अफ़सरा, चल, तेरे सदके, चल!" वह खड़ा होकर लगाम को घुमाता हुआ उससे चाबुक का काम लेने लगा। धोबी मुहल्ला पार करने तक उसे आशा थी कि शायद रास्ते में कोई सवारी मिल जाय, परन्तु

ड्योढ़ियों में ऊँघती हुई दो-एक धोबिनों को छोड़कर, सारा मुहल्ला सुन-सान पड़ा था। मुहल्ले से निकलकर उसने लगाम ढीली छोड़ दी और आप वज़न बराबर करने के लिए बाँस पर बैठ गया।

पीछे से बस आ रही थी, इसलिए पिछली सीट पर बैठी हुई स्त्री तेज़ हो उठी, "बैठाते वक्त मिन्नत तरला करके बैठा लेते हैं और चलाते वक्त इस तरह चलाते हैं जैसे सैर के लिए निकले हों। इतनी देर लगानी थी तो पहले कह देते, हम बस में बैठ जाते। हमारा इतना ज़रूरी काम है, नहीं हमें इतनी गरमी में निकलने की क्या पड़ी थी?"

साधुसिंह उचककर बाँस पर ज़रा और आगे हो गया और लगाम झटकने लगा, "चल तुझे ठण्ड पड़े, तेरी जवानी के सदके, चलाचल गोली की चाल, माई बीबी नाराज़ हो रही है। चलाचल तेरी खैर, अफ़सरा! मार दे हल्ला! ताक्!"

मगर लगाम के झटके खाकर भी अफ़सर की चाल तेज नहीं हुई। वह दो बार इधर-उधर सिर मारकर अपनी चाल चलता रहा। बस हॉर्न बजाती हुई पीछे से आई और धूल का बवण्डर छोड़कर आगे निकल गई।

"देखा निकल गई न बस? कहता था बस से पहले पहुँचाऊँगा!" स्त्री फिर बोली।

साधुसिंह उत्तर न देकर लगाम झटकता रहा और अफ़सर लगाम की परवाह किये बिना अपनी चाल चलता रहा।

सवा मील कोई ज्यादा रास्ता नहीं था। सूरज ढलने के बाद यही रास्ता चुटकियों में कट जाता था। मगर अभी ठीक दोपहर थी और दायें-बायें कहीं छाया नजर भी आती थी तो बहुत सिमटी-सिमटी और उजड़ी-उजड़ी-सी। कोलतार की सड़क जगह-जगह से पिघल गई थी। आस-पास के डेढ़-डेढ़ मर्द गहरे छप्पर सूख गए थे। साधुसिंह ने सोचा, अभी यह तो गरमी का आरम्भ ही है, आगे जाकर जाने क्या होगा?

"चल राजा, चल पुतरा, तेरी जान की खैर, तेरी सलामती की

बरकत, ग़म खा जा और चलाचल, तेरी माँ के दूध की दुआ··

ताँगे में बैठी हुई तीनों सवारियाँ क्लेम्ज़ के दफ्तर की थीं। आगे बैठा हुआ सरदार कह रहा था कि उसका साठ हज़ार का क्लेम मंजूर हुआ है जिसमें से आधा उसे नकद मिलेगा और आधा जायदाद के रूप में। पीछे बैठी हुई स्त्री रो रही थी कि बेड़ा ग़र्क हो क्लेम मंजूर करने वालों का जो उन्होंने उसका केवल अट्ठारह हज़ार का ही क्लेम मंजूर किया है······उनके गुजराँवाला में चार मकान थे और एक साढ़े तीन कनाल का बगीचा था। बगीचा चार कनाल का होता तो उन्हें और रुपया मिलता। अगर उन्हें पहले पता होता तो वे आधा कनाल ज्यादा लिख देते·········वे अपनी सचाई में ही मारे गए। घर में उसकी दो जवान लड़कियाँ थीं, जिन्हें अकेली छोड़कर उसे रोज़-रोज़ बटाला से जालन्धर के चक्कर काटने पड़ते थे। इसी तरह चक्कर काटते-काटते उसके पति की मृत्यु हो गई थी और वह आप भी बीमार रहने लगी थी।

"पता नहीं मुझे भी अपने जीते-जी इन कसाइयों का पैसा देखने को मिलता है या नहीं ? पहले वह चले गए, अब मैं चली जाऊँगी और मेरे बच्चे पीछे बिलख-बिलखकर मर जायँगे।" वह जैसे बात न करके फरियाद कर रही थी। उसके चेहरे का भाव ऐसा हो रहा था जैसे उसे अभी-अभी कोई सदमा पहुँचा हो।

उस स्त्री के साथ वाला व्यक्ति माथे पर तेवर डाले खामोश बैठा था।

"माईजी, अट्ठारह हज़ार में से कुछ मिला भी है या नहीं ?" आगे से सरदार ने सहानुभूति के स्वर में पूछा।

"कुल छः हज़ार मिला है," स्त्री बोली। "मेरा बच्चों वाला घर है। मैं छः हज़ार सिर पर मारूँ ? मेरे बच्चे अच्छा खाने-पहनने के आदी हैं। उन पर छः-छः हज़ार महीने में खर्च होते थे। और यह रुपया भी कहते हैं विधवा होने के कारण मुझे जल्दी मिल गया है। यह भी उन्होंने मुझ

पर एहसान किया है ! मेरा घर वाला चला गया और ये मुझ पर एह-सान करने लगे हैं !" और वह ज़रा-ज़रा रोने लगी ।

खामोश बैठा हुआ व्यक्ति सरदार की ओर मुड़ा और तिरस्कार की ध्वनि गले से निकालकर बोला, "सच कहते हैं जी, औरतों की अक्ल टखनों में होती है !"

"क्यों भाई, मैं गरीबनी ने तेरा क्या बिगाड़ा है जो तू मुझे गालियाँ दे रहा है ?" स्त्री आँसू पोंछती हुई तमककर बोली, "मैं तुझसे तेरी ज़मीन-जायदाद तो नहीं माँग रही । अपना जो-कुछ छोड़ आई हूँ, उसी का रोना रो रही हूँ ।"

"तू अकेली नहीं छोड़ आई, हम सब लोग अपने घर-बार पीछे छोड़ आये हैं । शुक्र कर तुझे छः हज़ार मिल गए हैं, यहाँ हम जैसे भी हैं जिन्हें अभी एक पाई नहीं मिली । हमारा यह कसूर है कि मियाँ-बीबी दोनों सलामत हैं । मैं भी अगर मर-खप जाता, तो मेरे बच्चों को भी अब तक दो कौर रोटी नसीब हो गई होती । आँखें मेरी अंधी हो रही हैं, जोड़ मेरे दर्द करते हैं, मैं जीता हुआ क्या मुर्दे से अच्छा हूँ ? मगर सरकार के घर में अंधेर-ही-अंधेर है जो इन्सान की ज़रूरत नहीं देखते, जीता मरा हुआ गिनते हैं । मुझे आज एक हज़ार ही दे दें तो मैं कोई छोटी-मोटी दुकान डालकर बैठ जाऊँ । मेरे बच्चों के पास तो फटी हुई कमीज़ें भी नहीं हैं ।"

"अपनी-अपनी तकदीर देती है भाई साहब, कोई किसी दूसरे की तकदीर थोड़े ही ले सकता है ?" सरदार मध्यस्थता करता हुआ बोला । "हम भी दुखी हैं और यह माई भी दुखी है, कौन दुखी नहीं है ? कोई कम दुखी है, कोई ज्यादा दुखी है ।"

"आपको साठ हज़ार रुपये मिल रहे हैं, आपको क्या दुख है ?" उस व्यक्ति ने पूछा ।

"मिल रहे हैं, यह भी तक़दीर की बात है," सरदार बोला । "क्लेम भरते वक्त अक़्ल आ गई, उसी का फल समझो । नहीं हमें भी ये दस-

पन्द्रह हज़ार पकड़ाकर हटा देते।"

"आपने क्लेम ज़्यादा भरा था?"

"हमारी डेढ़ लाख की जायदाद थी। मगर हमें पता था कि असली क्लेम भरेंगे तो कुछ पल्ले न पड़ेगा। सो वाहगुरु का नाम लेकर हमने इस तरह फ़ार्म भरा कि अपनी जायदाद की असली कीमत तो कम-से-कम हमें मिल जाय। मगर इन बेईमानों ने फिर भी कुल साठ हज़ार का क्लेम मंज़ूर किया है। हम छः भाई हैं, दस-दस हज़ार लेकर बैठ रहेंगे।"

"मैं इनसे कितना कहती रही, मगर इन्होंने मेरी एक न सुनी!" स्त्री हताशा-से हाथ मलने लगी।

दोनों व्यक्ति प्रश्नात्मक दृष्टि से उसे देखते रहे।

"मैं कहती रही कि जितनी छोड़ आये हो, उससे ज़्यादा का क्लेम भरो। मगर ये ऐसे मूरख थे कि हठ पकड़े रहे कि जो है वही भरेंगे—आगे इतने दुख उठाये हैं, अब और बेईमानी क्यों करें? आज मेरे सामने होते तो मैं पूछती कि बताओ बेईमानी करने वाले सुखी हैं या हम जैसे लोग सुखी हैं? लोगों ने जो छोड़ा था उसका दुगना-तिगना ले लिया और मैं बैठी हूँ छः हज़ार लेकर।... हाय, इन लोगों ने मेरे बच्चों को भूखों मार दिया!" और वह फिर ज़ोर-ज़ोर से रोने लगी।

उसके साथ बैठे व्यक्ति ने दूसरी ओर मुँह करके माथे पर हाथ रख लिया! सरदार फिर सहानुभूति प्रकट करने लगा, "रोने से कुछ नहीं होगा माई! जो लिखा है, वही मिलेगा। करतार ने पहले से ही सब करनी कर रखी है। जो मिला है, उसे ही लेकर सन्तोष कर।"

"सन्तोष करने को मैं ही एक रह गई हूँ? सारी दुनिया मौज करे और मैं सन्तोष करके बैठी रहूँ?" और वह रोती रही।

"ज़रा जल्दी पहुँचा भाई, इतना आहिस्ते क्यों चला रहा है?" माई के साथ बैठा हुआ व्यक्ति उतावला पड़कर साधुसिंह से बोला।

साधुसिंह झुँझलाकर बार-बार लगाम को झटके दे रहा था, पर घोड़े की चाल में फ़र्क नहीं आ रहा था। अब वह लगाम का सिरा

ज़ोर-ज़ोर से उसकी पीठ पर मारने लगा, "तेरी अफ़सर की ऐसी की तैसी ! तेरी पूँछ पर तितैया काटे ! चला चल पुतरा जल्दी !"

मगर तितैया के डर से भी अफ़सर की चाल नहीं बदली।

क्लेम्ज़ के दफ़्तर में उन लोगों को छोड़कर लौटते हुए साधुसिंह को एक भी सवारी नहीं मिली। वह काफ़ी देर मार्केट के मोड़ के पास खड़ा रहा, मगर सड़कों पर उस समय इन्सान ही दिखाई न देता था। तेरह नम्बर की दुकान के साये में दो-एक रिक्शा वाले सोये हुए थे, तेरह नम्बर का सरदार अन्दर बर्फ़ कूट रहा था। साधुसिंह का मन हुआ कि सरदार से एक गिलास शिकंजबी बनवाकर पिये और कुछ देर रिक्शा वालों के पास लेट रहे। मगर ताँगा खड़ा करने के लिए कोई छायादार जगह न थी और न ही नज़दीक कोई चबच्चा था जहाँ से वह घोड़े को पानी पिला देता। घोड़ा गरमी के मारे हूँक रहा था और बार-बार ज़बान बाहर निकालता था। जेब में जो सत्रह आने थे, वे भी हिसाब से उसके अपने नहीं थे। घोड़े के लिए कल का चारा ख़रीदने के लिए कम-से-कम दो रुपये चाहिए थे। उसने ज़बान से ओंठों को गीला किया और घोड़े का रुख शहर की तरफ़ कर दिया।

लम्बी, सीधी, वीरान सड़क पर वह अकेला ही ताँगा चला रहा था। आसपास पेड़ भी गरमी से परेशान सिर झुकाये खड़े थे। फिर भी न जाने किन झुरमुटों में बैठी हुई चिड़ियाँ बोल रही थीं—चिचिचि··· चिचि···ह्विश्···च्यु-यु-यु-यू-यु···चिचिचि···चिचि···

साधुसिंह लगाम ढीली छोड़कर पिछली सीट पर अधलेटा-सा हो गया। उसका मन उस समय उस आम के पेड़ की डालों में मँडरा रहा था, जो उसने बड़े चाव से अपने पत्तोकी के घर के आँगन में लगाया था। नौ रुपये महीने का वह घर बरसों के परिचय के कारण अपना घर ही लगता था। कई बार हीरां ने कहा था कि पराये घर में पेड़ लगा रहे हो, इसकी पालना करके दूसरों के लिए छोड़ जाओगे ! मगर तब यह किसने सोचा था कि वह घर इस तरह छूटेगा कि ज़िन्दगी-भर उसके

पास से गुज़रना नसीब न होगा।

आम का पेड़ इन दिनों खूब फल दे रहा होगा।···और हीरां ?

उस साल पेड़ पर पहली बार फल आया था। फल आने की खुशी में उसने जाने कितनी कच्ची अमियाँ खा डाली थीं।

"क्यों जान-बूझकर दाँत खट्टे करते हो ?" हीराँ चिढ़ती थी।

"यह अपने पेड़ का फल है जानी ! इसे खाकर दाँत खट्टे होते हैं ?"

और वह हीरां के अधखिले यौवन को आलिंगन में समेट लेता।

आम हरे से पीले और पीले से सुर्ख हो आये थे, जब बलवा शुरू हुआ और पत्तोकी की हर गली में खून बहने लगा। आधी रात को बलवई उनके मुहल्ले में घुस आये। जब उनके घर का दरवाज़ा तोड़ा गया तो वह हीराँ को साथ सटाये दम-साधे चारपाई पर पड़ा था। उन्होंने झट से पिछवाड़े की ओर कूद जाने का निश्चय किया। वह तो कूद गया मगर हीराँ दो बार उचककर भी कूद नहीं पाई। और इससे पहले कि वह फिर साहस करती, किसी हाथ ने उसे पीछे से खींच लिया।

अँधेरा, खेत और रेल की पटरियाँ···निर्जीव हाथ-पैर और भूख··· टिकट, कूपन, कार्ड और नम्बर···

नाम, साधुसिंह।

वल्द, मिलखासिंह।

कौम, खत्री।

ज़मीन-जायदाद, कोई नहीं।

रुपया-पैसा, कोई नहीं।

क्लेम··· ?

उसका वह आम का पेड़, जिसके पकने की उसने बेसब्री से इन्तज़ार की थी और जिसकी अमियाँ खा-खाकर वह अपने दाँत खट्टे करता रहा था—उस पेड़ की छाया में उसे भविष्य के जो बरस बिताने थे···!

उसके घर की अपनी एक खास तरह की गन्ध थी, जो कपड़ों की

गाँठ से लेकर आँगन की दीवारों तक हर चीज़ में समाई हुई थी। वह गन्ध···!

और वे रातें जो आँगन में लेटकर आसमान की ओर ताकते हुए बीती थीं···!

और आने वाली ज़िन्दगी के सब मनसूबे, जो उस घर की देहलीज़ के आर-पार जाते दिल में बना करते थे···!

"हीराँ, बता पहले तेरे बेटा होगा कि बेटी ?"

"हाय, शरम करो, कैसी बात करते हो ?"

"अच्छा, मैं बताऊँ ? पहले तेरे एक लड़की होगी, फिर दो लड़के होंगे, फिर एक लड़की होगी··· ।"

"चुप रहो, क्या यूँ ही बके जाते हो ।"

"दूसरी लड़की पहली लड़की से खूबसूरत होगी। उसके तेरे जैसे मुलायम बाल होंगे, बड़ी-बड़ी आँखें होंगी और ठुड्डी के पास यहाँ एक तिल होगा···"

"हाय, क्या करते हो ?"

"मैं उसके इसी तरह चिकुटी काटूँगा, और वह तेरी तरह ही रोएगी ।"

वह स्पर्श····! वह सिहरन···! वह कल्पना···! वह भविष्य····! साधुसिंह, वल्द मिलखासिंह, कौम खत्री, नम्बर····? क्लेम···?

आम का पेड़ अब बड़ा हो गया होगा। घर की दीवारों की गन्ध पहले से बदल गई होगी। और हीराँ···? उसकी गोद में न जाने किसके बच्चे होंगे !

साधुसिंह सीधा होकर बैठ गया। ताँगा धोबी मुहल्ले में पहुँच गया था। अब भी चारों तरफ़ हर चीज़ ऊँघ रही थी। उसने लगाम को दो-एक झटके दिये। घोड़े की गरदन थोड़ी ऊपर उठी और फिर झुक गई।

अड्डे पर पहुँचकर साधुसिंह ने घोड़े को चबच्चे से पानी पिलाया और सीट के नीचे से चारा निकालकर उसके आगे डाल दिया। घोड़ा

मुँह मारने लगा और वह उसकी पीठ पर हाथ फेरने लगा।

"तेरी बरकत रहे अफ़सरा, अपने पुराने दिन फिर लौटेंगे! खा ले, पेट भर ले। अपने सब क्लेम तुझी को पूरे करने हैं, तेरी जान की ख़ैर..."

अफ़सर गरदन लम्बी किये चुपचाप मुँह मारता रहा।

मवाली

उसने नारियल को कसकर एक गाली दी और ज़ोर से ठोकर लगाई। नारियल लुढ़कता हुआ समुद्र की लहरों की तरफ़ चला गया...

उस लड़के का परिचय केवल इतना ही है कि वह शाम के समय चौपाटी के मैदान में जमा होने वाली भीड़ में घूम रहा था। चौपाटी का मैदान काफ़ी खुला है, और जब समुद्र भाटे पर हो, तो और भी खुला हो जाता है। शाम के समय वहाँ पर सब तरह के लोग जमा होते हैं—वे जो वहाँ तफ़रीह के लिए आते हैं, और वे जो वहाँ आने वालों के लिए तफ़रीह का सामान प्रस्तुत करते हैं, और वे जो दूसरों को तफ़रीह करते देखकर लुत्फ़ ले लेते हैं। वहाँ धार्मिक प्रवचनों से लेकर आदम और हौवा की परम्परा के पालन तक, सभी कुछ होता है। अन्धेरे और रोशनी में इतना सुन्दर समझौता और कहीं नहीं होगा, जितना चौपाटी के मैदान में है।

और वह लड़का नंगे पाँव, नंगे सिर, सिर्फ़ घुटनों तक लम्बी मैली कमीज़ पहने, वहाँ एक सिरे से दूसरे सिरे की तरफ़ चल रहा था। एक जगह एक नेता का भाषण समाप्त हुआ था, और मज़दूर शामियाना उखाड़ रहे थे। ज़मीन पर फैले शामियाने पर से गुज़रते हुए, लड़के ने रुककर चारों ओर देखा, और हाथ उठाकर भाषण देने की मुद्रा में गले से कुछ अस्पष्ट ध्वनियाँ उत्पन्न कीं, और जब एक मज़दूर उसे हटाने के लिए उसकी ओर लपका, तो वह उसे जीभ दिखाकर भाग खड़ा हुआ। भागता हुआ वह एक व्यक्ति से टकरा गया, जो ज़मीन पर लेटकर कराहता हुआ भीख माँग रहा था। वह व्यक्ति ऊँची आवाज़ में उसे गालियाँ देने लगा। लड़के ने उसकी ओर ओंठ बिचका दिये, और पैर

से एक पत्थर को ठोकर मारकर दूर उड़ा दिया। फिर उसकी दृष्टि मलाबार हिल की तरफ़ से आती हुई बसों और कारों की पंक्ति पर स्थिर हो गई। उन्हें देखते हुए अनायास उसके पैरों का रुख बदल गया और वह दूसरी दिशा में चलने लगा।

उसकी उम्र तेरह या चौदह साल की होगी। उसका रंग साँवला था और नक़्श भी ख़ास अच्छे नहीं थे। मगर उसकी आँखों में अजब बेबाकी और आवारगी थी। आँखें सड़क की तरफ़ रहने से एक जगह वह रेत में पड़े हुए बड़े-से पत्थर से ठोकर खा गया, जिससे उसका घुटना छिल गया। उसने छिले हुए घुटने पर थोड़ी रेत डाल ली, और थोड़ी सी रेत अपनी हथेली पर रखकर उसे फूँक से उड़ा दिया।

पचास गज़ दूर से समुद्र की उमड़ती हुई लहरों का शब्द सुनाई दे रहा था। वह कुछ देर लहरों को किनारे की ओर आते, और फेनिल लकीर छोड़कर लौटते देखता रहा। हर लहर के बाद दूसरी लहर और आगे बढ़ आती थी। पश्चिमी क्षितिज के पास बादलों के दो लम्बे सुरमई टुकड़े, समुद्र से निकले हुए बड़े-बड़े मगरमच्छों की तरह, एक-दूसरे से उलझे हुए थे। लड़का उन मगरमच्छों को एक-दूसरे में विलीन होते देखता रहा। फिर वह बैठकर रेत में से सीपियाँ बटोरने लगा। केंकड़े और उसी तरह के दूसरे जलजन्तु उछलते हुए समुद्र की तरफ़ से आते थे और पास से निकल जाते थे। लड़का टूटी हुई सीपियों को दूर फेंक देता, और साबत सीपियों में से जो उसे खूबसूरत लगतीं, उन्हें कमीज़ से साफ़ करके जेब में डाल लेता। अँधेरा धीरे-धीरे गहरा हो रहा था, इसलिए सीपियाँ ढूँढ़ना कठिन हो रहा था। लड़का एक बड़ी-सी सुन्दर सीपी को, जो एक ओर से टूटी हुई थी, हाथ में लेकर अनिश्चित-सा देखता रहा कि उसे जेब में रख लेना चाहिए या नहीं। मगर उसकी नज़र ने टूटी हुई सीपी को स्वीकार नहीं किया। उसने उसे वहीं रेत पर रख दिया और उठ खड़ा हुआ। उसकी आँखें कई पल गम्भीर गर्जन करती हुई लहरों पर टिकी रहीं, फिर उस ओर मुड़ गईं जिधर चौराहे

की बत्ती का रंग लाल से पीला और पीले से हरा हो रहा था, और लाल रंग की बसें घरघराती हुई एक-दूसरी के पीछे भाग रही थीं।

एक बच्चा अपनी माँ की उँगली पकड़े नाचता हुआ आ रहा था। वह उसकी ओर देखकर मुस्कराया। एक गुब्बारे वाले के पास से निकलते हुए उसने उसके गुब्बारों को छेड़ दिया। गुब्बारे वाले ने घूमकर क्रोध से उसकी ओर देखा तो उसने उसकी ओर मुँह करके ज़ोर की सीटी बजाई और हाथ से जेब में भरी हुई सीपियों का वज़न और फैलाव महसूस करता हुआ, तेज-तेज चलने लगा।

सड़क के उस पार, चरनी रोड स्टेशन पर, एक लोकल गाड़ी मेरीन लाइन्ज़ की तरफ़ से आकर रुकी थी, जो अब सीटी बजाकर ग्रांट रोड की तरफ़ चल दी। कुछ देर में गाड़ी से उतरे हुए लोगों की भीड़ चरनी रोड के पुल पर आ गई। भइया लोग दूध बेचकर खाली बटलोये लिये हुए आ रहे थे। घाटी की युवतियाँ एक-दूसरी को छेड़ती हुई पुल की सीढ़ियाँ उतर रही थीं। लड़के की आँखें काफ़ी देर पुल के उस भाग पर केन्द्रित हो रहीं, जहाँ हर पल नये-नये चेहरे प्रकट होकर पास आने लगते थे, और कुछ ही देर में सीढ़ियाँ उतरकर अदृश्य हो जाते थे।

"खिप् खिप् खिर्र्र्," लड़के ने मुँह में दो उँगलियाँ डालकर आवाज़ पैदा की और मुस्कराकर चारों ओर देखा कि लोगों पर उसकी क्या प्रतिक्रिया हुई है। यह लक्षित करके कि उसकी आवाज़ की तरफ़ किसी का ध्यान नहीं गया, वह बाँहें फैलाकर तना-तना-सा चलने लगा। काले पत्थर के बुत के पास पहुँचकर उसने उसकी दो परिक्रमाएँ लीं, और फिर भागता हुआ वहाँ पहुँच गया जहाँ एक परिवार के छः-सात लोग एक गेंद को ऊँचे-से-ऊँचा उछालने की प्रतियोगिता में लगे थे। वह अपने रूखे बालों को खुजलाता हुआ, और बीच-बीच में बाईं पिंडली को दायें पैर से मलता हुआ, उनका खेल देखने लगा। एक पन्द्रह-सोलह साल की लड़की, जिसने अपना नीला दोपट्टा कसकर कमर से लपेट रखा था, गेंद के साथ ऊपर को उछलती, तो लड़के की

एड़ियाँ भी ज़मीन से तीन-चार इंच ऊपर उठ जातीं।

"ए लड़के !" किसी ने उसे पास से आवाज़ दी।

उसने घूमकर देखा। एक पारसी अपने सोये हुए बच्चे को कंधे से लगाये खड़ा था और उसे हाथ के इशारे से बुला रहा था। उसने ओंठ गोल करके पारसी की ओर देखा, और फिर खेल देखने में व्यस्त हो गया।

"ए लड़के इधर आ," पारसी ने फिर आवाज़ दी। "बच्चे को उठाकर सीतल बाग़ तक ले चल, एक आना मिलेगा।"

"खाली नहीं है," लड़के ने मना करने के ढंग से हाथ हिलाकर कहा।

"साले का दिमाग़ तो देखो," पारसी बड़बड़ाया। "खाली नहीं है।......चल आ इधर दो आना मिलेगा।"

"खाली नहीं है," लड़के ने और बेरुखी के साथ कहा, और जेब से एक सीपी निकालकर, उसे हवा में उछालकर दबोच लिया।

"साला बदमाश है," पारसी ने अपनी पत्नी से कहा, जो गरदन एक ओर को झुकाये, ढीले-ढाले ढंग से खड़ी थी। फिर बच्चे को स्वयं उठाकर वह सड़क की तरफ़ चल दिया।

गेंद उछालने की प्रतियोगिता लगभग समाप्त हो गई थी। वह लड़की अब अकेली ही बाँह घुमा-घुमाकर गेंद को पीछे की तरफ़ से उछाल रही थी। एक बार बाँह घुमाने में गेंद ज्यादा घूम गई और तेज़ी से समुद्र की ओर बढ़ चली। लड़की के मुँह से हल्की सी 'ओह' निकली। वह लड़का तेज़ी से गेंद के पीछे भाग खड़ा हुआ। इससे पहले कि गेंद सामने से आती हुई लहर की लपेट में आती उसने टख़ने-टख़ने पानी में जाकर उसे पकड़ लिया, हालाँकि इतना अँधेरा हो गया था कि गेंद और पत्थर में अन्तर कर पाना कठिन था। लड़का गीली गेंद को ज़रा-ज़रा उछालता हुआ, उन लोगों के पास ले आया।

"बड़ी तेज़ आँख है रे !" भारी गरदन वाले अधेड़ व्यक्ति ने, जो

उस परिवार का मुखिया था, गेंद उसके हाथ से लेते हुए गिलगिली-सी हँसी हँसकर कहा।

"किस तरह चिमगादड़ की तरह लपका था ?" लड़की बोली।

लड़के के गले से खुश्क-सी हँसी का स्वर सुनाई दिया।

"चल, हमारा सामान उठाकर ले चल," सूखी हड्डियों वाली स्त्री, जो शायद लड़की की माँ थी, अहसान करती हुई-सी बोली, "घर जाते-जाते एक-दो आने की कमाई ही कर ले।"

"चलेगा?" पुरुष ने उसे खामोश देखकर झिड़कने के स्वर में कहा।

"चलेगा," लड़के ने उत्तर दिया।

"तो यह दरी तह कर ले और बाकी सामान समेटकर टोकरी में रख ले," उस व्यक्ति ने दरी पर रखी प्लेटों और चम्मचों की ओर इशारा करते हुए कहा।

लड़के ने झिझक के साथ बिखरे हुए सामान को देखा, एक निगाह लड़की पर डाली, और झुककर चीज़ें इकट्ठी करने लगा।

"सब चीज़ें ठीक से रख। और पहले जा प्लेटें और चम्मच धो ला," स्त्री ने उसे आदेश दिया।

उसने जूठी प्लेटें और चम्मच इकट्ठे कर लिये, और समुद्र की तरफ़ चला गया। वहाँ उसने उन सबको रेत से मलकर साफ़ किया और अच्छी तरह अपनी कमीज़ से पोंछ लिया। एक प्लेट लौटती हुई लहर के साथ बह चली, तो उसने झपटकर उसे पकड़ लिया और फिर से साफ़ करने लगा। जब उसे तसल्ली हो गई कि सब चीज़ें अच्छी तरह चमक गई हैं तो वह सीटी बजाता हुआ उन्हें उन लोगों के पास ले आया।

"इतनी देर क्या करता रहा वहाँ ?" स्त्री आते ही उससे झिड़ककर बोली, "हम लोग रात तक यहीं बैठे रहेंगे क्या ? जल्दी कर !"

वह बैठकर प्लेटों को टोकरी में रखने लगा। स्त्री बिलकुल उसके पास आकर खड़ी हो गई और बोली, "सब चीजें गिनकर रखना।

प्लेटें पूरी छः हैं न ?"

लड़के ने प्लेटें गिनीं और सर हिलाया।

"और चम्मच ?" स्त्री झुककर देखती हुई बोली। "चम्मच तो मुझे पाँच नज़र आ रहे हैं।"

लड़के ने उन्हें गिना और कहा, "हाँ, चम्मच पाँच ही हैं।"

"पाँच कैसे हैं ?" स्त्री कठोर स्वर में बोली, "पूरे छः हैं। एक चम्मच कहाँ छोड़ आया है ?"

"छोड़ कहाँ आया होगा, जेब में रख लिया होगा। इसकी जेब देखो," पुरुष ने पास आते हुए कहा।

लड़के का हाथ सहसा जेब पर चला गया, और सीपियों के फैलाव को छूकर, उनके बचाव के लिए वहीं पर बना रहा।

"निकाल रे चम्मच, जेब पर हाथ क्यों रखे हुए है ?" पुरुष ने उसे डाँटा। लड़का सहमा-सा टोकरी के पास से उठकर दो क़दम पीछे हट गया।

"मैंने चम्मच नहीं लिया," उसने दुर्बल स्वर में कहा। "मुझे नहीं पता वह चम्मच कहाँ है ?"

"तुझे नहीं तो तेरे बाप को पता है ?" कहते हुए उस व्यक्ति ने लड़के को बालों से पकड़ लिया और उसके मुँह पर एक तमाचा जड़ दिया।

"दे दे चम्मच, तुझसे कुछ नहीं कहेंगे," स्त्री ने जैसे तरस खाकर कहा।

"मेरे पास चम्मच नहीं है," लड़का उसी स्वर में बोला, "मेरी जेब में मेरी अपनी चीजें हैं।"

"तेरी अपनी चीजें हैं !" पुरुष बड़बड़ाया। "अभी देखता हूँ तेरी कौनसी अपनी चीजें हैं ! और उसने लड़के के बालों को अच्छी तरह झिझोड़कर उसका जेब पर रखा हुआ हाथ अपने मोटे हाथ में कस लिया। उस हाथ के दबाव से लड़के ने महसूस किया कि उसकी जेब

में सीपियाँ टूट रही हैं। उसे जैसे उन सब सीपियों के चेहरे याद थे, और उसका हाथ पहचान रहा था कि उनमें से कौन-कौन सीपी टूट रही है। उसने झटके से पुरुष के हाथ से अपना हाथ छुड़ाने का प्रयत्न किया। परन्तु हाथ तो क्या छूट पाता, पुरुष ने उसकी गरदन को और दबोच लिया।

"साले, भागना चाहता है ?" पुरुष ओंठ चबाता हुआ बोला। "देख मैं कैसे अभी तेरा भुर्ता बनाता हूँ ! हटा हाथ।"

लड़के का हाथ उस मोटे हाथ के शिकंजे में निर्जीव-सा होकर हट गया। पुरुष ने उसकी जेब को बाहर से दबाया, जिससे कितनी ही सीपियाँ टूट गईं।

"है चम्मच !" उसने स्त्री की ओर देखकर कहा। "हरामी ने जाने जेब में क्या-क्या चीजें भर रखी हैं।"

"कैसा चोर है !" लड़की, जो अपने छोटे भाइयों को लेकर अलग खड़ी थी, बोली।

लड़के का संघर्ष समाप्त हो गया था। पुरुष ने उसकी जेब में हाथ डालकर जेब की सब चीज़ें बाहर निकाल लीं। अधिकांश टूटी हुई सीपियाँ ही थीं। उनके अतिरिक्त और जो माल बरामद हुआ, वह था एक ताँबे का तावीज़, एक आधा खाया हुआ अमरूद, कुछ कौड़ियाँ और एक पैसा…।

"नहीं निकला ?" स्त्री ने सब चीज़ों पर नज़र डालकर पूछा।

"नहीं," पुरुष खिसियाने स्वर में बोला। "जाने सूअर का बच्चा कहाँ छिपा आया है !"

"उधर धोने ले गया था, वहीं कहीं रख आया होगा।" लड़की दूर से बोली।

"ज़रा-सी उम्र में साले सब-कुछ सीख जाते हैं !" पुरुष ने लड़के की चीज़ें गुस्से में दूर फेंकते हुए कहा, "जा ले ले, ले जा अपनी चीज़ें माँ के पास।"

अँधेरे में ताँबे की चमक कुछ दूर तक दिखाई दी, फिर पता नहीं चला कि क्या कहाँ जा गिरा। सीपियाँ हल्की थीं इसलिए वे अधिक दूर नहीं गईं।

लड़का तेज़ी से उस ओर भागा जिधर उसकी चीजें फेंकी गई थीं। वह अँधेरे में आँखें गड़ा-गड़ाकर देखने लगा। लोगों के फेंके हुए जूठे दोने, खाली नारियल और मसली हुई थैलियाँ जहाँ-वहाँ पड़ी थीं। एक चमकती हुई चीज़ को देखकर वह उठाने के लिए झुका। वह सिगरेट की डिबियों का वरक था। एक जगह एक पत्थर को देखकर भी उसे तावीज़ का भ्रम हुआ। उसे उठाकर उसने ज़ोर से वापस पटक दिया। वह थैलियों और पत्तों को पैरों से दबा-दबाकर टटोलने लगा। फिर उसने दो-एक खाली नारियलों को झटककर देखा। काफ़ी देर देखने पर भी उसे कुछ नहीं मिला तो वह सीधा हो गया। वह पुरुष समुद्र की तरफ़ होकर वापस आ रहा था। लड़का तेज़ी से उसकी तरफ लपका।

"मेरा टिक्का दो!" उसने पुरुष के पास पहुँचकर आवेश के साथ कहा।

"हट!" पुरुष उसे बाँह से धकेलकर आगे बढ़ा।

लड़के ने पीछे से उसकी बाँह पकड़ ली और बोला, "पहले मेरा टिक्का दो। मैं तुम्हें ऐसे नहीं जाने दूँगा।"

"हट जा, नहीं तेरा भेजा फोड़ दूँगा," पुरुष बाँह छुड़ाने की चेष्टा करता हुआ बोला। "भैन—मवालीगीरी करता है?"

"बहन की गाली मत दो!" लड़के ने ललकारने के स्वर में कहा।

"कह रहा हूँ हट जा, नहीं तो······" पुरुष ने उससे बाँह छुड़ाकर उसे धक्का दे दिया। लड़के ने गिरते-गिरते अपने को सँभाल लिया और झपटकर उस आदमी की बाँह में दाँत गड़ा दिये। वह आदमी एक बार तड़प गया। फिर लड़के को ज़मीन पर गिराकर जूते से ठोकरें लगाने लगा। उसकी स्त्री और बच्चे पास आ गए, और आस-पास से और भी कई लोग जमा हो गए। लड़का चिल्ला रहा था, "मार दे। मेरी जान

निकाल दे, मगर मैं अपना टिक्का लिये बिना नहीं छोड़ूँगा। मार, मार, और मार........।"

तीन-चार व्यक्तियों के पकड़ने पर वह व्यक्ति मारने से हटा। उसकी पत्नी लोगों को लक्षित करके कहने लगी, "इतना-सा है, मगर पक्का चोर है। हमने इसे सामान उठाने के लिए लिया और सामान टोकरी में रखने को कहा। हमारे देखते-देखते इसने एक चम्मच गायब कर दिया। पूछा तो भाग खड़ा हुआ। अब उनकी बाँह पर दाँत काट रहा था। दुनिया में ऐसे-ऐसे नालायक भी होते हैं!"

वह व्यक्ति रोकने वालों से कह रहा था, "मैंने तो इसे कुछ ठोकरें ही लगाई हैं, ऐसे को तो गोली से उड़ा देना चाहिए। ये इन्सान हैं? ये तो कुत्तों से भी गये-बीते हैं! मेरा राज हो तो मैं इन बदमाशों को ज़िन्दा ज़मीन में गड़वा दूँ। साले एक चोरी करते हैं, फिर मवालीगीरी करके दिखाते हैं।"

और लड़का रो रहा था। दो व्यक्तियों की पकड़ में छटपटाता हुआ वह कह रहा था, "मेरा टिक्का मेरी माँ ने मुझे दिया था। मेरी माँ मर गई है। अब मुझे वह टिक्का कहाँ से मिलेगा? मैं इससे अपना टिक्का लेकर रहूँगा। या वह मेरी जान ले ले, या मैं उसकी जान ले लूँगा।" और वह पकड़ से छूटने के लिए अत्यधिक संघर्ष करने लगा।

उधर वह व्यक्ति कह रहा था, "मैं कहता हूँ इसे हवालात में देना चाहिए। इसकी तलाशी ली, तो इसकी जेब से ताँबे का एक तावीज़-सा निकला। यह भी साले ने किसी और का उठाया होगा। अब भी वह यहीं कहीं पर पड़ा है उसके लिए बदमाश के सिर पर खून सवार हो रहा है।"

"छोड़िए जी," कोई उसे समझाता हुआ बोला, "आप शरीफ़ आदमी हैं, आप क्यों इसके मुँह लगते हैं। चोरी करना और जेब काटना तो इन लोगों के धन्धे ही हैं। आपके साथ बाल-बच्चे हैं, आप चलिए।"

पास से गुज़रते हुए एक व्यक्ति ने दूसरे से पूछा, "क्या बात हुई है यहाँ?"

"पता नहीं," उसने उत्तर दिया। "इस लड़के ने चोरी-ओरी की है। उसके लिए इसे मार-आर पड़ी है।"

"बम्बई में इन लोगों के मारे नाक में दम है," उसने कहा।

"चौपाटी तो इन लोगों का खास अड्डा है!" दूसरे ने समर्थन किया।

"कैसे गालियाँ बक रहा है!"

"बकने दीजिए। आप क्यों अपना वक्त खराब करते हैं?"

वह व्यक्ति दूसरों के कहने-कहाने से स्त्री और बच्चों के साथ वहाँ से चल दिया। चलते हुए वह लोगों को समझाने लगा कि ऐसे लोगों के साथ सख्ती का बर्ताव करना क्यों ज़रूरी है। दो व्यक्ति अब भी लड़के को पकड़े हुए थे, और वह उनके हाथ से छूटने की चेष्टा करता हुआ, सब को गालियाँ दे रहा था। लोग उसे खींचते हुए दूसरी तरफ ले गए। जब उसे छोड़ा गया तो वह थोड़ी दूर जाकर, और भी ज़ोर-ज़ोर से गालियाँ देने लगा। फिर वह सिसकियाँ भरता हुआ रेत पर औंधा पड़ गया।

चौपाटी के अँधेरे भागों में अँधेरा और भी गहरा हो गया था। मैदान में टहलने वाले लोगों की संख्या बहुत कम हो गई थी। कहीं-कहीं कोई इक्का-दुक्का व्यक्ति ही नजर आता था। दूर कोने में एक व्यक्ति एक लड़की की कमर मे बाँह डाले बेंच पर बैठा उसे चूम रहा था। धीरे-धीरे समुद्र की लहरों और किनारे की बेंचों के बीच का अन्तर कम हो रहा था। 'स्पाश शी' की आवाज के साथ हर लहर दूसरी लहर से आगे बढ़ आती थी। दूर क्षितिज के पास मछुआ नावों की बत्तियाँ टिमटिमाती दिखाई दे रही थीं। टिट् टिट् टिट्...टिट् टिट् टिट्...टिट् टिट् टिट्! वातावरण में तरह-तरह की आवाज़ें बढ़ती जा रही थीं। अरब सागर की हवा 'हुआँ' का शब्द करती शहर की घनी बस्तियों की ओर बढ़ जाती थी।

काफी देर पड़ा रहने के बाद लड़का रेत से उठ खड़ा हुआ। वह

आँखों से जमीन को टटोलता हुआ, घिसटते पैरों से चलने लगा। सहसा उसका पैर एक नारियल पर से लुढ़क गया। उसने नारियल को कस-कर एक गाली दी और जोर की ठोकर लगाई। नारियल लुढ़कता हुआ समुद्र की लहरों की तरफ चला गया। उसने निकट जाकर उसे दूसरी ठोकर लगाई। नारियल सामने से आती हुई लहर में खो गया। उस लहर के लौटते-लौटते उसे नारियल फिर दिखाई दिया और लहर उमड़ती आ रही थी, इसलिए पास न जाकर उसने वहीं से एक पत्थर नारियल को मारा, और साथ भरपूर गाली दी, "तेरी माँ को..."

और वह सामने से आती हुई हर लहर को ज़ोर-ज़ोर से पत्थर मारने लगा, "तेरी माँ को...तेरी बहन को....।"

जानवर और जानवर

"मतलब निकलता है, और वह यह कि हर जानवर एक-सा नहीं होता। जानवर और जानवर में फर्क होता है!" उसने दाँत भींचकर कहा और पास के दरवाजे से बाहर चला गया।...

स्कूल की नई मेट्रन का नाम अनिता मुकर्जी था और उसकी आँखें बहुत अच्छी थीं। परन्तु क्योंकि वह आँट सैली की जगह पर आई थी,इसलिए पहले दिन बैचलर्स डाइनिंग रूम में किसी ने उससे खुलकर बात नहीं की।

उसने जॉन से बात करने की चेष्टा की तो वह 'हूँ हाँ' में उत्तर देकर टालता रहा। मणि नानावती को वह अपनी चायदानी में से चाय देने लगी तो उसने हल्का-सा धन्यवाद देकर मना कर दिया। पीटर ने अपना चेहरा ऐसा गम्भीर बनाये रखा जैसे उसे बात करने की आदत ही न हो। किसी तरफ़ से लिफ्ट न मिलने पर वह भी चुप हो गई और जल्दी से खाना समाप्त करके उठ गई।

"अब मेरी समझ में आ रहा है कि पादरी ने सैली को क्यों निकाल दिया," वह चली गई तो जॉन ने अपनी भूरी आँखें पीटर के चेहरे पर स्थिर करके कहा।

पीटर की आँखें नानावती से मिलीं। नानावती दूसरी ओर देखने लगी।

वैसे उन लोगों में से कोई नहीं जानता था कि आँट सैली को फ़ादर फ़िशर ने क्यों निकाल दिया। उसके जाने के दिन से ही जॉन मुँह-ही-मुँह बड़बड़ाकर अपना असन्तोष प्रकट करता रहता था। पीटर भी उसके साथ दबे-दबे कुढ़ लेता था।

"चलकर एक दिन सब लोग पादरी से बात क्यों नहीं करते?" एक बार हकीम ने तेज़ स्वर में कहा।

जॉन ने पीटर को आँख मारी और वे दोनों चुप रहे। दूसरे दिन सुबह पादरी के सिर दर्द की खबर पाकर हकीम उसकी मिजाज़पुर्सी के लिए गया तो जॉन पीटर से बोला, "ए, देखा? पहुँच गया न उसके तलुवे सूँघने? सन ऑव् ए गन! हमें उल्लू बनाता था।"

आँट सैली के चले जाने से बैचलर्स डाइनिंग रूम का वातावरण बहुत रूखा-सा हो गया था। आँट सैली के रहते वहाँ के वातावरण में बहुत घरेलूपन रहता था—सरदी में तो खास तौर पर आँटी के बीच में आ बैठने से वह कमरा एक परिवार का भरा-पूरा घर बन जाता था। वह अपनी कमर पर हाथ रखे बाहर से ही मज़ाक करती हुई आती थी :

"पीटर के लिए आज मग़ज़ का शोरबा बना है, या वह मेरा ही मग़ज़ खाएगा?"

या—

"....हो हो हो! मुझे नहीं पता था कि आज मरिण इस तरह गज़ब ढा रही है, नहीं तो मैं भी ज़रा सज-सँवरकर आती।"

ऐसे मौके पर पाल उसके सफेद बालों पर बँधे लाल या नीले रंग के फीते की ओर संकेत करके कहता, "आँटी, यह फ़ीता बाँधकर तुम बिलकुल दुलहिन जैसी लगती हो।"

"अच्छा, दुलहिन जैसी लगती हूँ? तो कौन करेगा मुझसे ब्याह? तुम करोगे?" और उसकी आँखें मिच जातीं, ओंठ फैल जाते और उसके गले से छलछलाती हुई हँसी का स्वर सुनाई देता।

एक बार पीटर ने कहा, "आँटी, पाल कह रहा था कि वह आज-कल में तुमसे ब्याह के लिए प्रस्ताव करने वाला है।"

आँटी ने चेहरा ज़रा तिरछा करके आँखें पीटर के चेहरे पर स्थिर किये हुए उत्तर दिया, "तो मुझे और क्या चाहिए? मुझे एक साथ पति भी मिल जायगा और बेटा भी।"

और फिर वही हँसी, जैसे पानी के वेग में छोटे-छोटे पत्थर फिसलते चले जायँ।

आँट सैली के चले जाने से अकेले लोगों का वह परिवार काफ़ी उखड़ गया था। कुछ दिन पहले इसी तरह मीराशी चला गया था। उसके बाद फिर पाल की छुट्टी कर दी गई थी। मीराशी तो खैर बिगड़ैल आदमी था, मगर पाल को बैचलर्स डाइनिंग रूम के बैचलर्स—जिनमें दो स्त्रियाँ सम्मिलित थीं—बहुत चाहते थे। हालाँकि जॉन को पाल का अंग्रेजी फिल्मों के बटलर की तरह अकड़कर चलना पसन्द नहीं था और उन दोनों की प्रायः आपस में झड़प हो जाती थी, फिर भी उसकी पीठ के पीछे वह उसकी तारीफ़ ही करता था। जिस दिन पाल चला गया, उस दिन जॉन खिड़की के पास बैठा सिर हिलाकर पीटर से कहता रहा, "अच्छा हुआ जो यह लड़का यहाँ से चला गया। अभी तो यह बाहर जाकर कुछ बन जायगा, वर्ना यहाँ रहकर इसका क्या बनना था ? तुम भी जवान आदमी हो, तुम यहाँ किसलिए पड़े हुए हो ?"

और पीटर घड़ी को चाबी देता हुआ चुपचाप दीवार को देखता रहा।

पाल और मीराशी के निकाले जाने की वजह का तो खैर सब को पता था। मीराशी का बिलकुल सीधा अपराध था कि उसने फ़ादर फ़िशर के माली को पीट दिया था। पाल का अपराध दूसरी तरह का था। उस ने आवारा नस्ल का एक हिन्दुस्तानी कुत्ता पाल लिया था जिसे वह हर समय अपने साथ रखता था। हालाँकि कुत्ते में कोई ऐसी खासियत नहीं थी, बहुत सादा-सी सूरत, फीका बादामी रंग और लम्बूतरा-सा उसका कद था, फिर भी क्योंकि पाल ने उसे पाल लिया था इसलिए वह उसे बहुत लाड़ से रखता था। उसने उसका नाम बेबी रखा था और कई बार उसे बगल में लिये हुए खाना खाने आ जाता था। जल्दी ही बेबी बैचलर्स डाइनिंग रूम में खाना खाने वाले सब लोगों का बेबी बन गया, एक मणि नानावती को छोड़कर जो उसकी सूरत देखते ही घबरा जाती थी। घबराहट में उसके चेहरे का रंग सुर्ख हो जाता था और उसका नाटा छरहरा शरीर अपने काबू में नहीं रहता था। एक बार

बेबी उसके हाथ में हड्डी देखकर उसके घुटने पर चढ़ने की कोशिश करने लगा तो वह घबराकर कुरसी पर खड़ी हो गई और दोनों हाथ हवा में हिलाती हुई चिल्लाने लगी, "ओई ओई हिश ! गो अवे ! प्लीज़ पाल, टेक हिम अवे ! प्लीज़....."

पाल पुलाव का चम्मच मुँह के पास रोककर धूर्तता के साथ मुस्कराया और बेबी को डाँटकर बोला, "चल इधर बेबी ! खानदान को बदनाम करता है ?"

मगर बेबी को हड्डी का कुछ ऐसा शौक था कि वह डाँट सुनकर भी नहीं हटा। वह नानावती की कुरसी पर चढ़कर उसके जिस्म के सहारे खड़ा होने की चेष्टा करने लगा। इस जद्दोजहद में नानावती कुरसी से गिरने जा रही थी कि पाल ने जल्दी से उठकर उसे बगल से पकड़कर नीचे उतार दिया। फिर उसने बेबी को दो चपत लगाईं और उसे कान से खींचता हुआ अपनी सीट के पास ले आया। बेबी पाल की टाँगों के आसपास मँडराने लगा।

"मेरा सारा ब्लाउज़ खराब कर दिया !" नानावती हाँफती हुई रूमाल से अपना ब्लाउज़ साफ़ करने लगी। उसके उभार पर एकाध जगह बेबी का मुँह छू गया था।

बेबी अब पाल के घुटने से अपनी नाक रगड़ रहा था। पाल ने उसकी पीठ सहलाते हुए कहा, "नॉटी चाइल्ड ! ऐसी भी क्या शरारत कि इन्सान एटिकेट तक भूल जाय !"

जॉन पीटर की तरफ़ देखकर मुस्कराया। नानावती भड़ककर बोली, "देखो पाल, मुझे इस तरह का मज़ाक कतई पसन्द नहीं।" क्रोध से उसका पूरा शरीर तमतमा आया। यदि वह और शब्द बोलती तो साथ रो देती।

परन्तु उसे गम्भीर देखकर भी पाल गम्भीर नहीं हुआ। बोला, "मुझे खुद ऐसा मज़ाक पसन्द नहीं मादाम ! मैं इसकी हरकत के लिए बहुत शर्मिन्दा हूँ !" और उसके निचले ओंठ पर हलकी-सी मुस्कराहट आ गई।

नानावती क्षण-भर रुँधे हुए आवेश के साथ पाल को देखती रही। फिर अपना नेपकिन मेज़ पर पटककर वह तेज़ी से उठकर कमरे से चली गई। उसके जाते ही जॉन ने अपनी भूरी आँखें फैलाकर सिर हिलाया और कहा, "आज तुम्हारे साथ कुछ-न-कुछ होकर रहेगा। वह अब सीधी शुतुरमुर्ग के पास शिकायत करने गई है....कुतिया !"

परन्तु नानावती ने कोई शिकायत नहीं की। बल्कि दूसरे दिन सुबह उसने पाल से अपने व्यवहार के लिए क्षमा माँग ली। जॉन को अपनी भविष्यवाणी के गलत निकलने का खेद तो हुआ पर इससे नानावती के प्रति उसका व्यवहार पहले से बदल गया। उसने उसकी अनुपस्थिति में उसके लिए वेश्यावाचक विशेषणों का प्रयोग करना बन्द कर दिया। यहाँ तक कि एक दिन वह एटकिन्सन के साथ इस सम्बन्ध में विचार करता रहा कि इतनी अच्छी और मेहनती लड़की को उसके पति ने घर से क्यों निकाल रखा है।

नानावती ने भी उसके बाद बेबी को देखते ही 'ओई ओई हिश' करना बन्द कर दिया। गाहे-बगाहे वह उसे देखकर मुस्करा भी देती। एक बार तो उसने बेबी की पीठ पर हाथ भी फेर दिया, यद्यपि हाथ फेरते हुए वह सिर से पाँव तक सिहर गई।

बैचलर्स डाइनिंग रूम में पाल के ज़ोर-ज़ोर के कहकहे रात को दूर तक सुनाई देते। बेबी को लेकर नानावती से तरह-तरह के मज़ाक किये जाते। मज़ाक सुनकर जॉन की भूरी आँखों में चमक आ जाती और वह सिर हिलाता हुआ मुस्कराता रहता।

मगर एक दिन सुबह बैचलर्स डाइनिंग रूम में सुना गया कि रात को फ़ादर फ़िशर ने बेबी को गोली से मार दिया है।

जॉन अपनी चुँधियाई हुई आँखों को मेज़ पर स्थिर किये चुपचाप आमलेट काटकर खाता रहा। नानावती का छुरी वाला हाथ ज़रा-ज़रा काँपने लगा। एक बार सहमी हुई नज़र से जॉन और पीटर को देखकर वह अपनी नज़रें प्लेट पर गड़ाये रही। पीटर स्लाइस का टुकड़ा काटने

में इस तरह व्यस्त हो रहा जैसे बहुत महत्त्वपूर्ण काम कर रहा हो।

"पाल अभी नहीं आया, ए ?" जॉन ने किरपू से पूछा।

किरपू ने नमकदानी पीटर के पास से हटाकर जॉन के सामने रख दी।

"नहीं।"

"वह आज आएगा ? हिः !" जॉन ने आमलेट का बड़ा-सा टुकड़ा काटकर मुँह में भर लिया।

"बेज़बान जानवर को इस तरह मारने से....मैं कहता हूँ....मैं कहता हूँ...." आमलेट जॉन के गले में अटक गया।

किरपू चटनी की बोतल रखने के बहाने जॉन के कान के पास फुस-फुसाया, "पादरी आ रहा है !"

सबकी नज़रें प्लेटों पर जम गईं। पादरी लबादा पहने, बाइबल लिये गिरजे की तरफ़ जा रहा था। वह खिड़की के पास से गुज़रा तो तीनों अपनी-अपनी कुरसी से आधा-आधा उठ गए।

"गुड मॉर्निंग होली फ़ादर !"

"गुड मॉर्निंग माई सन्ज़ !"

"आज अच्छा सुहाना दिन है !"

"परमात्मा का शुक्र करना चाहिए।"

पादरी खट्टी की बाड़ से आगे निकल गया तो जॉन बोला, "यह अपने आपको पादरी कहता है ! सवेरे परमात्मा से संसार-भर का चरित्र सुधारने के लिए प्रार्थना करेगा और रात को..............हरामज़ादा !"

नानावती सिहर गई।

"ऐसी गाली नहीं देनी चाहिए," वह दबे हुए और शंकित स्वर में बोली।

"तुम इसे गाली कहती हो ?" जॉन आवेश के साथ बोला। "मैं कहता हूँ इसमें ज़रा भी गाली नहीं है। तुम्हें इसकी करतूतों का पता नहीं है ? यह पादरी है ?"

नानावती का चेहरा फीका पड़ गया। उसने शंकित दृष्टि से इधर-उधर देखा, परन्तु चुप रही। जॉन के चौड़े माथे पर कई लकीरें खिंच गई थीं। वह बोतल से चटनी उँडेलने लगा, जैसे उसी पर सारा गुस्सा निकाल लेना चाहता हो।

पीटर सारा समय खिड़की से बाहर की ओर देखता रहा।

डिंग डाँग ! डिंग डाँग ! गिरजे की घंटियाँ बजने लगीं। नानावती जल्दी से नेपकिन से मुँह पोंछकर उठ खड़ी हुई और क्षण-भर दुविधा में खड़ी रहकर सहसा बाहर चली गई।

"चुहिया ! कितना डरती है, ए ?" जॉन बोला।

मिसेज़ मर्फ़ी एटकिंसन के साथ बात करती हुई खिड़की के पास से निकलकर चली गई। गिरजे की घंटियाँ लगातार बज रही थीं—डिंग डाँग ! डिंग डाँग ! डिंग डाँग !

जॉन जल्दी-जल्दी चाय के घूँट भरने लगा। जल्दी में चाय की कुछ बूँदें उसके गाउन पर गिर गईं।

"गाश् !" वह प्याली रखकर रुमाल से गाउन साफ़ करने लगा।

"गिरजे नहीं चल रहे ?" पीटर ने उठते हुए पूछा।

जॉन ने जल्दी-जल्दी दो-तीन घूँट भरे और शेष चाय छोड़कर उठ खड़ा हुआ। उनके दरवाज़े से निकलते ही किरपू और ईसरसिंह में बचे हुए मक्खन के लिए छीना-झपटी होने लगी, जिसमें एक प्याली गिरकर टूट गई। हकीम और बैरो को आते देखकर ईसरसिंह जल्दी से भागकर पैंट्री में चला गया और किरपू कपड़े से मेज़ साफ़ करने लगा।

हकीम कन्धे झुकाकर चलता हुआ बैरो को रात की घटना सुना रहा था। डाइनिंग रूम के पास आकर उसका स्वर और धीमा हो गया—"यू सी, बेबी को डॉली के साथ देखते ही पादरी को एकदम गुस्सा आ गया और वह अन्दर जाकर अपनी राइफ़ल निकाल लाया। एक ही फ़ायर में उसने उसे चित कर दिया। डॉली कुछ देर बिटर-

बिटर पादरी को देखती रही। फिर बाड़ के पीछे की तरफ़ भाग गई। बाद में सुना है पादरी ने उसे गरम पानी से नहलवाया और डॉक्टर को बुलाकर उसके इंजेक्शन भी लगवाये…"

"कहाँ पादरी की बिस्कुट और सैंडविच खाकर पली हुई कुतिया और कहाँ बेचारा बेबी !" बैरो मुस्कराया।

"मगर उस बेचारे को क्या पता था ?"

वे दोनों हँस दिये।

"बेबी को मालूम होता कि यह कुतिया कैनेडा से आई है और इस की कीमत तीन सौ रुपया है, तो शायद वह…"

और वे दोनों फिर हँस दिये।

"यह तो था कि कल पादरी ने देख लिया, मगर इससे पहले अगर…"

बैरो ने हकीम को आँख मारी। वह सहसा चुप कर गया। बाड़ के मोड़ के पास जॉन और पीटर खड़े थे। पीटर अपने जूते का फ़ीता ठीक कर रहा था।

"गुड मॉर्निंग पीटर !"

"गुड मॉर्निंग बैरो।"

"आज बहुत चुस्त लग रहे हो। बाल आज ही कटाये हैं ?"

"नहीं, दो-तीन दिन हो गए।"

"बहुत अच्छे कटे हैं।"

"शुक्रिया।"

सहसा डिंग डाँग की आवाज़ रुक गई। वे सब तेजी से बढ़कर गिरजे के अन्दर चले गए।

पन्द्रहवाँ साम गाने के बाद प्रार्थना आरम्भ हुई। सब लोग घुटनों के बल होकर और आँखों पर हाथ रखकर पादरी के साथ-साथ बोलने लगे :

"—अवर फ़ादर, हू आर्ट इन हैवन, हैलोड बी दाई नेम, दाई

किंगडम कम, दाई विल बी डन, इन दिस वर्ल्ड एज़ इन हैवन···"

बैरो ने प्रार्थना करते हुए बीच में अपनी बीबी के कान के पास फुसफुसाकर कहा, "मेरी, तुम्हारा पेटीकोट दिखाई दे रहा है।"

मेरी एक हाथ आँखों पर रखे हुए दूसरे हाथ से अपना स्कर्ट नीचे सरकाने लगी।

"···नाउ एण्ड फ़ॉर एवर मोर, आमेन।"

गिरजे में उस दिन और उससे अगले दिन पाल की सीट खाली रही। इस बात को लक्षित हर एक ने किया, मगर किसी ने इस बारे में दूसरे से बात नहीं की। पाल ईसाई नहीं था मगर फ़ादर फ़िशर के आदेशानुसार स्टाफ़ के हर सदस्य का गिरजे में उपस्थित होना अनिवार्य था—जो ईसाई नहीं थे उनका रोज आना और भी ज़रूरी था। पादरी गिरजे से निकलता हुआ उन लोगों की सीटों पर एक नज़र अवश्य डाल लेता था। तीसरे दिन भी पाल अपनी सीट पर दिखाई नहीं दिया तो पादरी गिरजे से निकलकर सीधा स्टाफ़-रूम में पहुँच गया। वहाँ पाल एक कोने में मेज़ के पास खड़ा कोई मैगज़ीन देख रहा था। पादरी उसके पास पहुँच गया तो भी उसकी तनी हुई गरदन में ख़म नहीं आया।

"गुड मॉर्निंग पादरी!" वह क्षण-भर के लिए आँख उठाकर फिर मैगज़ीन देखने लगा।

"तुम तीन दिन से गिरजे में नहीं आये," उत्तेजना में पादरी का हाथ पीठ के पीछे चला गया। वह बहुत कठिनता से अपने स्वर को संयत रख पाया था।

"जी हाँ, मैं तीन दिन से नहीं आया," मैगज़ीन नीचे करके उसने गम्भीर दृष्टि से पादरी को देखा।

"मैं कारण जान सकता हूँ?"

"कारण कुछ भी नहीं।"

पादरी ने उत्तेजना के मारे बाइबल को दोनों हाथों में भींच लिया और तेवर डालकर कहा, "तुम जानते हो कि जो अच्छा-भला होकर

भी सुबह गिरजे में प्रार्थना करने नहीं आता उसे यहाँ रहने का अधिकार नहीं ?"

क्रोध के मारे पाल के जबड़ों के पास माँस में खिचाव आ गया था। उसने मैगज़ीन मेज़ पर रखकर हाथ जेबों में डाल लिये और बिलकुल सीधा खड़ा हो गया। बड़ी खिड़की के पास जॉन नज़र झुकाए बैठा था और आठ-दस लोग नोटिस बोर्ड और चिट्ठियों वाले रैक के आसपास खड़े अपने को किसी-न-किसी तरह व्यस्त ज़ाहिर करने की चेष्टा कर रहे थे। उनमें से किसी ने पाल के साथ आँख नहीं मिलाई। पाल का गला ऐसे काँप रहा था जैसे वह कोई बहुत सख्त बात कहने जा रहा हो।

"पादरी, हम गिरजे में जो प्रार्थना करते हैं, उसका कोई मतलब भी होता है ?"

एक लकीर दूर तक खिचती चली गई। पादरी का चेहरा क्रोध से स्याह हो आया।

"तुम्हारे कहने का मतलब है…" उसके दाँत भिच गए और वाक्य पूरा नहीं हुआ। नोटिस बोर्ड के पास खड़े लोगों के चेहरे फ़क हो गए।

"मेरा मतलब है पादरी, कि रात को हम ग़रीब जानवरों को गोली से मारते हैं और सुबह गिरजे में जाकर उनकी रक्षा के लिए ईश्वर से प्रार्थना करते हैं, इससे कुछ मतलब निकलता है ?"

पादरी पल-भर खून-भरी आँखों से पाल को देखता रहा। उसकी साँस तेज़ हो आई थी।

"मतलब निकलता है और वह यह कि हर जानवर एक-सा नहीं होता। जानवर और जानवर में फ़र्क होता है," उसने दाँत भींचकर कहा और पास के दरवाज़े से बाहर चला गया, हालाँकि उसके घर का रास्ता दूसरी ओर के दरवाज़े से था।

पन्द्रह मिनट बाद स्कूल का क्लर्क आकर पाल को चिट्ठी दे गया कि उस दिन से उसे नौकरी से बरखास्त कर दिया गया है; वह चौबीस घण्टे के अन्दर-अन्दर क्वार्टर खाली करके चला जाय।

"यह पादरी नहीं, राक्षस है," जॉन मुँह-ही-मुँह बड़बड़ाया।

पीटर को उस दिन शहर में काम हो गया, इसलिए वह रात को बहुत देर से लौटकर आया। हकीम और बैंरो खेल के मैदानों की जाँच में व्यस्त रहे। नानावती को हल्का-सा ज्वर हो आया। पाल को चलते समय केवल जॉन ही अपने कमरे में मिला। वह अपनी खिड़की में रखे हुए गमलों को ठीक कर रहा था।

"जा रहे हो ?" उसने पाल से पूछा।

"हाँ, तुमसे गुड बाई कहने आया हूँ।"

जॉन गमलों को छोड़कर अपनी चारपाई पर आ बैठा।

"मैं जवान होता तो मैं भी तुम्हारे साथ चलता," उसने कहा। "मगर मुझे यहाँ से निकलकर पता नहीं कब्र की राह भी मिलेगी या नहीं। मेरी हड्डियों में ज़ोर होता तो तुम देखते..."

पाल ने मुस्कराकर उसका हाथ दबाया और वापस चल दिया।

"विश यू बेस्ट आफ़ लक।"

"थैंक यू।"

पाल के चले जाने पर आँट सैली ने बैचलर्स डाइनिंग रूम में आना बन्द कर दिया और कई दिन खाना अपने क्वार्टर में ही मँगवाती रही। जॉन और पीटर भी अलग-अलग समय पर आते, जिससे बहुत कम उन में मुलाकात हो पाती। नानावती अब पहले से भी सहमी हुई आती और जल्दी-जल्दी खाना खाकर चली जाती। फ़ादर फ़िशर ने उसे पाल वाला क्वार्टर दे दिया था, इसलिए वह अपने को अपराधिनी-सी महसूस करती थी। जॉन ने उसके बारे में अपनी राय फिर बदल ली थी।

मगर धीरे-धीरे स्थिति फिर पुराने स्तर पर आने लगी। बैचलर्स डाइनिंग रूम में फिर क़हक़हे और बहस-मुबाहिसे सुनाई देने लगे, जब एक रात सुना गया कि आँट सैली को भी नोटिस मिल गया है कि वह चौबीस घण्टे के अन्दर-अन्दर क्वार्टर खाली करके चली जाय।

"सैली को ?" जॉन के ओंठ खुले ही रह गए। "किस बात पर ?"

"बात का पता नहीं।" पीटर सूप में चम्मच हिलाता रहा।

जॉन का चेहरा गम्भीर हो गया। वह मक्खन की टिकिया खोलता हुआ बोला, "मुझे लगता है कि इसके बाद अब मेरी बारी आएगी। मुझे पता है कि उसकी आँखों में कौन-कौन खटकता है। सैली का अपराध यह था कि वह रोज़ उसकी हाज़िरी नहीं देती थी और न ही वह..." और वह नानावती की ओर देखकर चुप कर गया। पीटर कुछ कहने लगा, मगर बाहर से हकीम को आते देखकर चुपचाप नेपकिन से ओंठ पोंछने लगा।

हकीम के आने पर कई क्षण चुप्पी रही। किरपू हकीम के आगे प्लेट और छुरी-काँटे रख गया।

"तुम्हारे क्वार्टर में नये पर्दे बहुत अच्छे लगे हैं," जॉन हकीम को लक्षित करके बोला।

"तुम्हें पसन्द हैं ?"

"बहुत।"

"शुक्रिया !"

"मेरा ख्याल है चॉप्स में नमक ज़्यादा है।"

"अच्छा ?"

"लेकिन पुडिंग अच्छा है।"

खाना खाकर जॉन और पीटर लॉन में टहलने लगे। आँट सैली के क्वार्टर को जाने वाले मोड़ के पास रुककर जॉन ने पूछा, "सैली से मिलने चलते हो ?"

"च-लो।"

"उस हरामी ने देख लिया तो...?"

"तो कल सुबह चलें ?"

"हाँ, इस वक्त काफ़ी देर भी हो गई है।"

"बेचारी सैली !"

"इस पादरी जैसा ज़ालिम आदमी मैंने कहीं नहीं देखा। फ़ौज में बड़े-बड़े सख्त अफ़सर देखे हैं मगर ऐसा आदमी नहीं देखा।"

पीटर जंगले के पास घास पर बैठ गया।

"मुझे फिर से फ़ौज की ज़िन्दगी मिल जाय तो मैं एक दिन भी यहाँ न रहूँ..."

और घास पर बैठकर जॉन पीटर को अपनी फ़ौज की ज़िन्दगी के वही किस्से सुनाने लगा जो वह अनेक बार सुना चुका था।

"पूरी-पूरी बोतल ए ! रोज़ रात को रम की एक पूरी बोतल मैं पी जाता था। और मेरा एक साथी था जो पास के गाँव से दो लड़कियों को ले आया करता था।...कभी-कभी हम रात को निकलकर उनके गाँव चले जाते थे। अफ़सर लोग देखते थे मगर कुछ कह नहीं सकते थे। वे खुद भी तो यही कुछ करते थे। वह ज़िन्दगी ज़िन्दगी थी। यह भी कोई ज़िन्दगी है, ए ?"

मगर पीटर उसकी बात न सुनकर बिना आवाज़ पैदा किये, मुँह-ही मुँह एक गीत गुनगुना रहा था।

"वैसे दिन फिर से मिल जायँ तो मुझे और क्या चाहिए, ए ?"

ऊपर देवदार की छतरियाँ हिल रही थीं। हवा से जंगल में साँय-साँय की आवाज़ सुनाई दे रही थी। होस्टल की ओर से आने वाली पगडंडी पर पैरों की आवाज़ सुनकर जॉन सहसा चौंक गया।

"कोई आ रहा है, ए ?"

पीटर सिर उठाकर जँगले से नीचे देखने लगा।

पैरों की आहट के साथ सीटी की आवाज़ ऊपर आती गई।

"बैरो है !"

"यह भी एक हरामज़ादा है।"

पीटर ने उसका हाथ दबा दिया।

"अभी क्वार्टर में नहीं गये टैफ़ी ?" बैरो ने अँधेरे से निकलकर आते हुए पूछा।

"नहीं, ज़रा हवा ले रहे हैं।"

"आज हवा काफ़ी ठण्डी है। पन्द्रह-बीस दिन में बर्फ़ पड़ने लगेगी।"

जॉन जंगले का सहारा लेकर उठ खड़ा हुआ।

"अच्छा, गुड नाइट पीटर ! गुड नाइट बैरो !"

"गुड नाइट।"

कुछ रास्ता पीटर और बैरो साथ-साथ चलते रहे। बैरो चलते-चलते बोला, "जॉन अब काफ़ी सठिया गया है, क्यों ? इसे अब रिटायर हो जाना चाहिए।"

"हाँ-आँ !" पीटर के शरीर में एक सिहरन भर गई।

"मगर यह तो यहीं अपनी कब्र बनाएगा, क्यों ?"

पीटर ने मुँह तक आई हुई गाली ओंठों में दबा ली।

बैरो का क्वार्टर आ गया।

"अच्छा, गुड नाइट।"

"गुड नाइट।"

सुबह नाश्ते के समय जॉन ने पीटर से पूछा, "सैली चली गई, ए ?"

"पता नहीं," पीटर बोला, "मेरा ख्याल है अभी नहीं गई।"

"वह आ रही है !" नानावती नेपकिन से मुँह पोंछकर उसे हाथ में मसलने लगी। जॉन और पीटर की आँखें झुक गईं।

आँट सैली का रिक्शा डाइनिंग रूम के दरवाजे के पास आकर खड़ा हो गया। वह कन्धे पर एक झोला लटकाये हुए उसमें से उतरकर डाइनिंग रूम में आ गई।

"गुड मॉर्निंग एवरीबडी !" उसने दहलीज़ लाँघते ही हाथ हिलाया।

"गुड मॉर्निंग सैली !" जॉन ने भूरी आँखें उसके चेहरे पर स्थिर करके भारी आवाज़ में कहा। जो वह मुँह से नहीं कह सका, वह उसने अपनी गहरी दृष्टि से कह देने की चेष्टा की।

"बस आज ही जा रही हो ?" नानावती ने डरे-सहमे हुए स्वर में

पूछा और एक बार दायें-बायें देख लिया। आँट सैली ने आँखें झपकते हुए मुस्कराकर सिर हिलाया।

"मैं सुबह मिलने आ रहा था," पीटर बोला। "मगर तैयार होते-होते देर हो गई। मेरा ख्याल था कि तुम शाम को जा रही हो···"

आँट सैली ने धीरे से उसका कन्धा थपथपा दिया और उसी तरह मुस्कराते हुए कहा, "मैं जानती हूँ मेरे बच्चे। मैं चाहती हूँ कि तुम खुश रहो।"

"आँटी, कभी-कभार ख़त लिख दिया करना," पीटर ने उसका मुरझाया हुआ कोमल हाथ अपने मजबूत हाथ में लेकर हिलाया। आँट सैली की आँखें डबडबा आईं और उसने उन पर रूमाल रख लिया।

"अच्छा गुड बाई !" कहकर वह जल्दी से दहलीज़ पार करके रिक्शा की ओर चली गई।

"गुड बाई सैली !" जॉन ने पीछे से कहा।

"गुड बाई आँटी !"

"गुड बाई !"

आँट सैली ने रिक्शा में बैठकर उनकी ओर हाथ हिलाया। मज़दूर रिक्शा खींचने लगे।

कुछ देर बाद नानावती ने कहा, "किरपू, एक बटर स्लाइस।"

जॉन पीछे की ओर देखकर बोला, "मुझे चाय का थोड़ा गर्म पानी और दे दो।"

और पीटर जैम के डिब्बे में से जैम निकालने लगा।

जिस दिन अनिता आई, उसी शाम से आकाश में सलेटी बादल घिरने लगे। रात को हल्की-हल्की बरफ़ भी पड़ गई। अगले दिन शाम तक बादल और गहरे हो गए। पीटर खेतानी गाँव तक घूमकर वापस आ रहा था, जब अनिता उसे ऊपर की पगडंडी पर टहलती दिखाई दी। वह उस ठण्ड में भी साड़ी के ऊपर सिर्फ़ एक शाल लिये थी। पीटर को देखकर वह मुस्कराई। पीटर ने उसकी मुस्कराहट का उत्तर

अभिवादन से दिया।

"घूमने जा रही हो ?" उसने पूछा।

"नहीं, यूँ ही ज़रा टहलने के लिए निकल आई थी।"

"तुम्हें ठण्ड नहीं लग रही ?"

"ठण्ड तो है ही, मगर क्वार्टर में बन्द होकर बैठने को मन नहीं हुआ।" उसने शाल से अपनी बाँहें भी ढाँप लीं।

"तुम तो ऐसे घूम रही हो जैसे मई का महीना हो।"

"मेरे लिए मई और नवम्बर दोनों बराबर हैं। मेरे पास ऊनी कपड़े हैं ही नहीं।" वह फिसलन पर से सँभलती हुई पगडंडी से उतरकर उसके बराबर आ गई।

ऊनी कपड़े तो तुमने पादरी के डिनर की रात के लिए सँभालकर रख रखे होंगे। तब तक सरदी में बीमार न पड़ जाना।" उसने मज़ाक के अन्दाज़ में अपना निचला ओंठ सिकोड़ लिया।

"सच, मेरे पास इस शाल के सिवा और कोई ऊनी कपड़ा है ही नहीं," अनिता उसके बराबर चलती हुई बोली। "सच पूछो तो यह भी प्रेज़ेंट का है। हमें उधर गरम कपड़ों की ज़रूरत पड़ती ही नहीं।"

"तो परसों तक एक बढ़िया-सा कोट सिला लो। परसों फ़ादर का डिनर है।"

"परसों तक ?···ओह !" और वह मीठी-सी हँसी हँस दी।

"क्यों ? यहाँ एक दिन में अच्छे-से-अच्छा कोट सिल जायगा।"

"मेरे पास इतने पैसे होते तो मैं यहाँ नौकरी करने क्यों आती ? तुम्हें पता है मैं नौ सौ मील से यहाँ आई हूँ····अ····"

"पीटर—या सिर्फ़ बिकी···"

"मैं अपने घर में अकेली ही कमाने वाली हूँ, मिस्टर पीटर। मेरी माँ पहले बटुवे सिया करती थी, पर अब उसकी आँखें बहुत कमज़ोर हो गई हैं। मेरा छोटा भाई अभी पढ़ता है। उसके एम० एस-सी० करने तक मुझे नौकरी करनी है।"

पीटर ने रुककर एक सिगरेट सुलगा लिया। बरफ़ के हल्के-हल्के गाले पड़ने लगे थे। उसने आकाश की ओर देखा। बादल बहुत गहरे थे।

"आज काफ़ी बरफ़ पड़ेगी," उसने कोट के कॉलर ऊँचे करते हुए कहा। "चलो तुम्हें तुम्हारे क्वार्टर तक छोड़ आऊँ।····तुम सी कॉटेज में हो न?"

"हाँ।···चलो मैं तुम्हें चाय की प्याली बनाकर पिलाऊँगी।"

"इस मौसम में चाय मिल जाय, तो और क्या चाहिए?"

वे सी कॉटेज को जाने वाली पगडंडी पर उतरने लगे। कुहरा घना हो जाने से रास्ता दस कदम आगे तक ही दिखाई दे रहा था। अनिता एक जगह पत्थर से ठोकर खा गई।

"चोट लगी?"

"नहीं।"

"मेरे कंधे का सहारा ले लो।"

अनिता ने बराबर आकर उसके कंधे का सहारा ले लिया। जब वे सी कॉटेज के बरामदे में पहुँचे तो बरफ़ के बड़े-बड़े गाले गिरने लगे थे। घाटी में जहाँ तक आँख जाती थी बादल-ही-बादल भरे थे। एक बिल्ली दरवाज़े से सटकर काँप रही थी। अनिता ने दरवाज़ा खोला तो वह म्याऊँ करके दरवाज़े के अन्दर घुस गई।

दरवाज़ा खुलने पर पीटर ने उसके सामान पर एक सरसरी नज़र डाली। स्कूल के फ़र्नीचर के अतिरिक्त उसे एक टीन का ट्रंक और दो-चार कपड़े ही दिखाई दिये। मेज़ पर एक सस्ता टेबल लैम्प पड़ा था और उसके पास एक युवक का फ़ोटोग्राफ़ रखा था। पीटर चारपाई पर बैठ गया। अनिता स्टोव जलाने लगी।

चारपाई पर एक पुस्तक और एक आधा लिखा हुआ पत्र पड़ा था। पीटर ने पत्र ज़रा हटाकर रख दिया और पुस्तक उठा ली। पुस्तक पत्र लिखने की कला के सम्बन्ध में थी और उसमें हर तरह के पत्र दिये हुए थे। पीटर उसके पन्ने पलटने लगा।

अनिता ने स्टोव जलाकर केतली चढ़ा दी। फिर उसने बाहर देखकर कहा, "बरफ़ पहले से तेज़ पड़ने लगी है।"

पीटर ने देखा कि बरामदे के बाहर ज़मीन पर सफ़ेदी की हल्की तह बिछ गई। उसने सिगरेट का टुकड़ा बाहर फेंक दिया जो धुन्ध में जाते ही बुझ गया।

"आज रात भर बरफ़ पड़ती रहेगी," उसने कहा।

अनिता स्टोव पर हाथ फेंकने लगी।

बाहर बरामदे में पैरों की आहट सुनकर पीटर बाहर निकल आया। जॉन भारी-भारी कदमों से चलता आ रहा था।

"ए पीटर!"

"हलो टैफ़ी!...इस वक्त बर्फ़ में कैसे निकल पड़े?"

"तुम्हारे क्वार्टर में गया था। तुम वहाँ नहीं मिले तो सोचा शायद यहाँ मिल जाओ।" और वह मुस्करा दिया।

"वैसे घूमने के लिए मौसम भी अच्छा है!" पीटर ने कहा।

वे दोनों कमरे में आ गए। अनिता प्यालियाँ धो रही थी। एक प्याली उसके हाथ से गिरकर टूट गई।

"ओह!"

"प्याली टूट गई?"

"हाँ, दो थीं, उनमें से भी एक टूट गई।"

"कोई बात नहीं। सॉसर तो हैं। उनसे प्यालियों का काम चल जायगा।"

पीटर फिर चारपाई पर बैठ गया। जॉन मेज़ पर रखे फ़ोटोग्राफ़ के पास चला गया।

"फ़िआंसे—ए?"

अनिता ने मुस्कराकर सिर हिलाया।

"यह चिट्ठी भी उसी को लिखी जा रही थी?"

जॉन ने चारपाई पर रखे पत्र की ओर संकेत किया। पीटर पुस्तक

का वह पृष्ठ पढ़ने लगा, जिस पर से वह चिट्ठी नकल की जा रही थी।

जॉन स्टोव के पास जा खड़ा हुआ और अनिता के शाल की प्रशंसा करने लगा।

चाय हो गई तो अनिता ने प्याली बनाकर जॉन को दे दी। अपने और पीटर के लिए सॉसर में चाय डालती हुई बोली, "हमारे घर में कुल दो ही प्यालियाँ थीं। वही मैं उठा लाई थी। आते ही एक टूट गई।"

जॉन और पीटर ने एक-दूसरे की ओर देखकर आँखें हटा लीं।

"यह सी कॉटेज है तो अच्छी, मगर ज़रा दूर पड़ जाती है," पीटर दोनों हाथों में सॉसर सम्भालता हुआ बोला। "तुम पादरी से कहो कि तुम्हें डी या ई कॉटेज में जगह दे दें। वे दोनों खाली पड़ी हैं। उनमें दो-दो बड़े कमरे हैं।"

"अच्छा ?" अनिता बोली। "वैसे मेरे लिए तो यही कमरा बहुत बड़ा है। घर में हमारे पास इससे भी छोटा एक कमरा है जिसमें हम तीन जने रहते हैं।...उसमें से भी आधा कमरा मेरे भाई ने ले रखा है और आधे कमरे में हम माँ बेटी गुज़ारा करती हैं। अब मैं आ गई हूँ तो माँ को जगह की कुछ सहूलियत हो गई होगी।..........मैं अपनी माँ को बहुत प्यार करती हूँ। पहला वेतन मिलने पर मैं उसके लिए कुछ अच्छे-अच्छे कपड़े भेजना चाहती हूँ। उसके पास अच्छे कपड़े नहीं हैं।"

पीटर और जॉन की आँखें पल-भर मिली रहीं। जॉन का निचला ओंठ थोड़ा सिकुड़ गया।

"चाय बहुत अच्छी है !"

"खूब गरम है और फ्लेवर भी बहुत अच्छा है।"

"रोज़ बरफ़ पड़े तो मैं रोज़ यहाँ आकर चाय पिया करूँगा।"

पीटर के सॉसर से चाय छलक गई।

"सॉरी !"

बरफ़ और कुहरे के कारण बाहर बिलकुल अंधेरा हो गया था। बरफ़ के गाले दूध-फेन की तरह निःशब्द गिर रहे थे। जॉन और पीटर अनिता के क्वार्टर से निकलकर ऊपर की ओर चले तो पगडंडी पर दो-दो इंच बरफ़ इकट्ठी हो चुकी थी। अंधेरे में ठीक से रास्ता दिखाई नहीं दे रहा था, इसलिए जॉन ने पीटर की बाँह पकड़ ली।

"अच्छी लड़की है, ए ?"

"बहुत सीधी है।"

"मुझे डर है कि यह भी नानावती की तरह···"

"रहने दो, उसके साथ इसका मुकाबिला करते हो ?"

"वह आई थी तो वह भी ऐसी ही थी····"

"मैं इसे इन लोगों के बारे में सब-कुछ बता दूँगा।"

जॉन को थोड़ी खाँसी आ गई। वे कुछ देर खामोश चलते रहे। उनके पैरों के नीचे कच्ची बरफ़ का कचर शब्द ही सुनाई देता रहा।

कुछ फ़ासले से टार्च की रोशनी आकर उनकी आँखों से टकराई। पल-भर के लिए उनकी आँखें चुँधियाई रहीं। फिर उन्होंने ऊपर से उतरती हुई आकृति को देखा।

"गुड ईवनिंग बैरो !"

"गुड ईवनिंग टैफ़ी ! किधर से घूमकर आ रहे हो ?"

"यूँ ही बरफ़ पड़ती देखकर थोड़ी दूर निकल गए थे।"

"बरफ़ में घूमना सेहत के लिए अच्छा है !"

पीटर ने जॉन की उँगली दबा दी।

"तुम भी सेहत बनाने के लिए निकले हो ?"

इस बार जॉन ने पीटर की उँगली दबाई।

"हाँ, मौसम अच्छा है, मैं भी ज़रा घूम लूँ।"

"अच्छा, गुड नाइट !"

"गुड नाइट !"

टार्च की रोशनी काफ़ी नीचे पहुँच गई तो जॉन पैर से रास्ता टटोल-

कर चलता हुआ बोला, "यह पादरी का खुफ़िया-है-खुफ़िया। मैं इस हरामी की रग-रग पहचानता हूँ।"

पीटर खामोश चलता रहा।

सुबह जिस समय पीटर की आँख खुली, उसने देखा कि वह जॉन के क्वार्टर में एक आराम कुरसी पर पड़ा है·······वहीं उस पर दो कम्बल डाल दिये गए हैं और सामने रम की खाली बोतल रखी है। वह उठा तो उसकी गरदन दर्द कर रही थी। उसने खिड़की के पास जाकर देखा कि जॉन चाय का फ्लास्क लिये डाइनिंग रूम की तरफ़ से आ रहा है। वह ठण्डी सलाखों को पकड़े हुए दूर तक फैली हुई बरफ़ को देखता रहा।

जॉन कमरे में आ गया और भारी कदमों से तख्ते पर शब्द करता हुआ पीटर के निकट आ खड़ा हुआ।

"कुछ सुना, ए ?"

पीटर ने उसकी ओर देखा।

"रात को पादरी ने उसे अपने घर पर बुलाया था······।"

"किसे, अनिता को ?"

जॉन ने सिर हिलाया। उसकी आँखें क्षण-भर पीटर की आँखों से मिली रहीं। पीटर गम्भीर होकर दीवार को देखता रहा।

"टैफी, मैं उससे कहूँगा कि वह यहाँ से नौकरी छोड़कर चली जाय। उसे नहीं पता कि यहाँ वह किन जानवरों के बीच आ गई है !"

जॉन फ्लास्क से प्यालियों में चाय उँडेलने लगा।

"उसमें खुददारी हो तो उसे आप ही चली जाना चाहिए," वह बोला। "किसी के कहने से क्या होगा ? कुछ नहीं।"

"हो या न हो, मगर मैं उससे कहूँगा ज़रूर···"

"तुम पागल हुए हो ? हमें दूसरों से मतलब ? वह अनजान बच्ची तो है नहीं।"

पीटर कुछ न कहकर दीवार को देखता हुआ चाय के घूँट भरने लगा।

"अब जल्दी से तैयार हो जाओ, गिरजे का वक्त हो रहा है!"

पीटर ने दो घूँट में चाय की प्याली खाली करके रख दी।

"मैं गिरजे नहीं जाऊँगा।"

जॉन कुरसी की बाँह पर बैठ गया।

"आज तुम्हारी सलाह क्या है?"

"कुछ नहीं, मैं गिरजे नहीं जाऊँगा।"

जॉन मुँह-ही-मुँह में बड़बड़ाकर ठण्डी चाय की चुस्कियाँ लेता रहा।

दो दिन की बरफ़वारी के बाद फ़ादर फिशर के डिनर की रात को मौसम खुल गया। डिनर से पहले घण्टा-भर सब लोग 'म्यूज़िकल चेयर्स' का खेल खेलते रहे। उस खेल में मणि नानावती को पहला पुरस्कार मिला। पुरस्कार मिलने पर उससे जो-जो मज़ाक किये गए, उनसे उसका चेहरा इतना लाल हो गया कि वह थोड़ी देर के लिए कमरे से बाहर भाग गई। मिसेज़ मर्फ़ी उस दिन बहुत सुन्दर हैट और रिबन लगाकर आई थी; उसकी बहुत प्रशंसा की गई। डिनर के बाद लोग काफी देर तक आग के पास खड़े बातें करते रहे। पादरी ने सबसे नई मेट्रन का परिचय कराया। अनिता अपने शाल में सिकुड़ी हुई सबके अभिवादन का उत्तर मुस्कराकर देती रही।

एटकिन्सन मिसेज़ मर्फ़ी को आँख से इशारा करके मुस्कराया।

हिचकॉक अपनी मुस्कराहट व्यक्त न होने देने के लिए सिगार के लम्बे-लम्बे कश खींचने लगा। जॉन उधर से नज़र हटाकर हिचकॉक से बात करने लगा।

"तुम्हें तली हुई मछली अच्छी लगी?......मुझे तो ज़रा अच्छी नहीं लगी।"

"मुझे मछली हर तरह की अच्छी लगती है, कच्ची हो या तली हुई... हाँ मछली हो।"

जॉन ने मुँह बिचकाया।

"रम की बोतल साथ हो तो भी तुम्हें अच्छी नहीं लगती ?"

जॉन दाँत खोलकर मुस्कराया और सिर हिलाने लगा।

मजलिस बरख़ास्त होने पर जब सब बाहर निकले तो हिचकॉक ने धीमे स्वर में जॉन से पूछा, "क्या बात है, आज पीटर दिखाई नहीं दिया....?"

जॉन उसका हाथ दबाकर उसे ज़रा दूर ले गया और दबे हुए स्वर में बोला, "उसे पादरी ने जवाब दे दिया है।"

"पीटर को भी ?"

जॉन ने सिर हिलाया।

"वह कल सुबह यहाँ से चला जायगा।"

"क्या कोई ख़ास बात हुई थी ?"

जॉन ने उसका हाथ दबा दिया। पादरी और बैरो के साथ-साथ अनिता सिर झुकाये हुए शाल में छिपी-सिमटी बरामदे से निकलकर चली गई। जॉन की भूरी आँखें कई गज़ तक उनका पीछा करती रहीं।

"यह आप भी गरम पानी से नहाता है या नहीं ?"

"क्यों ?" बात हिचकॉक की समझ में नहीं आई।

"इसने डॉली को गरम पानी से नहलाया था न....!"

हिचकॉक हो-हो करके हँस दिया। बरामदे में से गुज़रते हुए हकीम ने आवाज़ दी, "खूब कहकहे लग रहे हैं ?"

"मैं तली हुई मछली हज़म कर रहा हूँ," हिचकॉक ने उत्तर दिया, और ऊँचे स्वर में जॉन को बतलाने लगा कि बग़ैर काँटे की मासेर मछली कितनी ताकतवर होती है।

सुबह जॉन अनिता नानावती और हकीम बैचलर्स डाइनिंग रूम में नाश्ता कर रहे थे, जब पीटर का रिक्शा दरवाज़े के पास से निकलकर चला गया। पीटर रिक्शे में सीधा बैठा रहा। न उसे किसी ने अभिवादन किया और न ही वह किसी को अभिवादन करने के लिए मुड़ा। अनिता की झुकी हुई आँखें और झुक गईं ....जॉन ऐसे गरदन किये रहा जैसे

उस तरफ़ उसका ध्यान ही न हो। बैचलर्स डाइनिंग रूम में कई क्षण ख़ामोशी रही।

सहसा पादरी को खिड़की के पास से गुज़रते देखकर सब लोग अपनी-अपनी सीट से आधा-आधा उठ गए।

"गुड मॉर्निंग फ़ादर !"

"गुड मॉर्निंग माई सन्स।"

"कल रात का डिनर बहुत ही अच्छा रहा," हकीम ने चेहरे पर विनयपूर्ण मुस्कराहट लाकर कहा।

"सब तुम्हीं लोगों की वजह से है।"

"मैं तो कहता हूँ कि ऐसे डिनर रोज़ हुआ करें...."

पादरी आगे निकल गया तो भी कुछ देर हकीम के चेहरे पर वह मुस्कराहट बनी रही।

"मेरे लिए उबला हुआ अण्डा अभी तक क्यों नहीं आया ?" सहसा जॉन क्रोध के साथ बड़बड़ाया। अनिता स्लाइस पर मक्खन लगाती हुई सिहर गई। किरपू ने एक प्लेट में उबला हुआ अण्डा लाकर जॉन के पास रख दिया।

"छीलकर लाओ !" जॉन ने उसी तरह कहा और प्लेट को हाथ मार दिया। प्लेट अण्डे समेत नीचे जा गिरी और टूट गई।

उधर गिरजे की घण्टियाँ बजने लगीं .... डिंग डाँग ! डिंग-डाँग ! डिंग-डाँग !"